श्रीमते मध्वाचार्याय नमः

श्रीरामकृष्णौ विजयेतेतमाम्

❀ श्रीवनमालिप्रार्थना-शतकम्

❀ श्रीराधारमण-शतकम्

❀ श्रीभक्तनाम-मालिका

❀ अनेकविध-स्तोत्राणि च

मित्रभावेन सम्प्राप्तं न त्यजेयं कथंचन ।
दोषो यद्यपि तस्य स्यात् सतामेतदगर्हितम् ।।

(वाल्मीकीय रा० ६।१८।३)

मित्रभाव से मो शरणि, आवै जो नर कोय ।
त्यागूँ नहिं कौनिहु दशा, दोषवन्त हू होय ।।

रचयिता—

श्रीवनमालिदासशास्त्री

श्रीगुरुदेवाय नमः

श्रीरामकृष्णौ विजयेतेतमाम्

श्रीमन्माध्वगौडेश्वरौ विजयेतेतमाम्

श्रीवनमालिप्रार्थनाशतकम्

निखिलशास्त्रपारावारपारदृश्व-सख्याऽवताराष्टोत्तरशत-स्वामि
श्रीकृष्णानन्ददासजीमहाराज-शिष्येण श्रीगोपालचम्पू-
श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पू-श्रीपद्यावली-श्रीभक्ति-
ग्रन्थमाला-श्रीस्तवरत्ननिधि-प्रभृतिप्राचीन-
ग्रन्थानां टीकाकारेण काव्यवेदान्त-
तीर्थेन घटिकाशतकेन महाकविना
श्रीवनमालिदासशास्त्रिणा
प्रणीतम् ।

तेनैवाऽनूदितं संशोधितं प्रकाशितं च

द्वितीयावृत्तिः ५००	**शिवचतुर्दशी वि० सं० २०३२**	निछावर प्रेम पूर्वक पाठ

भूमिका

श्रीहरिपदारविन्दद्वन्द्वमकरन्दरसपानलोलुप—

भ्रमरवर-सज्जनों को यह सुनकर परम हर्ष होगा कि, एक कविरूप माली, भावरूप वाटिका से विविध छन्द एवं अभिलाषरूप पुष्पों को चुनकर "श्रीवनमालिप्रार्थनाशतक"-नामक एक पुष्पस्तवक बनाकर उनकी सेवार्थ लाया है। वे सज्जनरूप भ्रमर, उसका प्रेमरूप मकरन्दरस पानकर, प्रेमोन्मत्त होकर भावपूर्वक जब गायन करेंगे, तब, प्रेमपुजारी भगवान् श्रीवृन्दावनविहारी मुरलीधारी स्वजन-दुःखापहारी शीघ्र ही दर्शन देकर कृतार्थ करेंगे।

अस्मत्कर्तृक-एक-"श्रीसख्य-सुधाकरः" नामक ग्रन्थ वि० सं० २००७ में मुद्रित हो चुका था। इस वर्ष भी दुबारा प्रकाशिन हुआ है। वह भी एक सख्यभावप्रधान प्रार्थनामय ग्रन्थ है; यह ग्रन्थ भी, सख्यसुधाकर सुधा-पानार्थ अमृत-चषक (पानपात्र) ही है। मैंने, श्रीसख्यसुधाकर की भूमिका में लिखा था कि, मेरे भावोद्‌गार, पूर्णतया सब इस ग्रन्थ में नहीं आ पाये हैं, यदि शरीर बना रहा और मेरे सखा ने मेरी बुद्धि, ऐसी ही रक्खी तो, द्वितीयावृत्ति में प्रकाशित करने की चेष्टा करूँगा। सो यह 'प्रार्थनाशतक' मेरे सनातन सखा श्रीहरि की ही अहैतुकी कृपा का फल है, 'श्रीसख्य-सुधाकरः' का परिशिष्ट भाग ही समझिये। आगे भी मेरे सखा की यदि ऐसी ही कृपा बनी रही तो मुझ से कुछ न कुछ लिखवाते ही रहेंगे; क्योंकि, मेरी तो वास्तविक दशा यह है कि—

कवित विवेक एक नहिं मोरे। सत्य कहों लिखि कागद कोरे॥

गुरुवर दया के सागर, इतनी दया तो करदो॥टेक॥
सूखा हुआ है मुखड़ा, टुक हर्ष दिल में भरदो॥१॥
निज कर्म दोष से हम, बिछुड़े हुये हैं तुम से।
ये कर्म हमारे प्रभुजी, श्रीकृष्ण ओर करदो॥२॥
मन है हमारा चंचल, पापों से प्रेम करता।
मम प्रेम कृष्ण सन्मुख, अब जन्म-जन्म करदो॥३॥
तुम से बना के गुरुवर, यदि मैं रहाया जग में।
तो विरद नाम अपना, "हरिप्रेष्ठ" दूर करदो॥४॥

इति निवेदयति—

श्रीकृष्णानन्द स्वर्गाश्रम विनीतो—
रेलवे फाटक के पास, श्रीवृन्दावन **वनमालिदासः**

श्रीमन्माध्व-गौडेश्वर-सम्प्रदाय-प्रचारक—

'श्रीगोपालचम्पू' 'श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पू' 'श्रीपद्यावली' 'श्रीभक्तिग्रन्थमाला'
'श्रीस्तवरत्ननिधि' आदि अनेक ग्रन्थों के टीकाकार एवं 'श्रीकृष्णानन्द-
महाकाव्य' 'श्रीहरिप्रेष्ठ-महाकाव्य' 'श्रीसख्य-सुधाकर'
'श्रीभक्तनाम-मालिका' 'श्रीवनमालिप्रार्थना-शतक'
'श्रीराधारमण-शतक' आदि अनेक ग्रन्थों
के रचियता—

सख्य-रस उपासक—

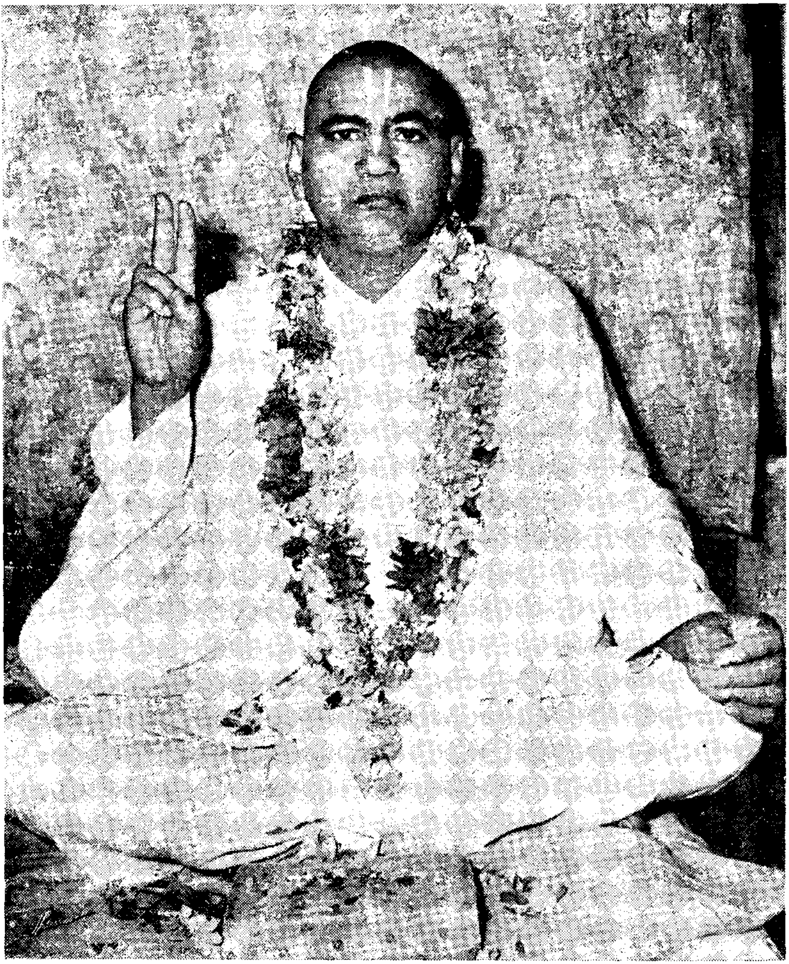

महाकवि श्रीवनमालिदासशास्त्री जी महाराज (वृन्दावन)

श्रीगुरुदेवाय नमः

श्रीरामकृष्णौ विजयेतेतमाम्

श्रीमन्माध्वगौडेश्वरौ विजयेतेतमाम्

श्रीवनमालिप्रार्थनाशतकम्

उपगीति-वृत्तमेतत्—

वनमालिप्रार्थनायाः, शतकं वनमालिदासेन ।
क्रियते तद् वनमालिन् !, वनमालेवाऽऽस्मसात्क्रियताम् ॥१॥

देवभाषानभिज्ञैस्तु दुर्ज्ञेयं शतकं त्विदम् ।
इति मत्वा मूलकर्त्रा हिन्दीभाषाऽपि लिख्यते ॥

हे श्रीमन् ! सखे ! वनमालिन् ! यह "श्रीवनमालिप्रार्थनाशतक"-नाम का जो शतक "वनमालिदास"-नामक आपके ही सखा बना रहे हैं, उसको आप, वनमाला की तरह सहर्ष स्वीकार कर लीजिये ॥१॥

सख्यसंवलितज्ञानभक्तिदं स्वगुरुं स्तौति आर्या-छन्दसा—

यस्य कृपालवशक्त्या, शक्तः शतकं त्वहं विनिर्मातुम् ।
स जयति गुरुदेवो मे, श्रीकृष्णानन्ददासाख्यः ॥२॥

सख्यभाव से युक्त ज्ञान एवं भक्ति के प्रदाता, अपने श्रीसद्गुरुदेव की स्तुति करते हैं कि, जिनकी कृपा के लेशमात्र से अल्पबुद्धिवाला भी मैं, शतक बनाने को समर्थ हुआ हूँ, उन्हीं "निखिल-शास्त्रपारावारपार-दृश्वसख्यावताराष्टोत्तरशत-स्वामि श्रीकृष्णानन्ददासजी महाराज" मेरे श्रीगुरुदेवजू की जय हो ॥२॥

स्वेष्टदेवसहितान् स्वसम्प्रदायाचार्यान् स्तौति अनुष्टुब्वृत्तेन—

सखायौ रामकृष्णौ मे जयतः स्म निरन्तरम् ।
जयन्ति मध्वगौराङ्ग-नित्यानन्दा जगद्धिताः ॥३॥

अपने इष्टदेव के सहित स्वसम्प्रदायाचार्यों की स्तुति करते हैं—मेरे प्राणप्रिय सनातन सखा श्रीकृष्ण-बलदेव की सदा जय हो। और जगत्

का परमहित करने के लिये तथा श्रीब्रह्मसम्प्रदाय का प्रचार करने के लिये ही निज का भूमण्डल पर अवतार हुआ, ऐसे-दिव्य पावनावतार-आचार्यवर्य "श्रीमध्वाचार्यजी" महाराज की जय हो। पाखण्ड-परायण वंगदेश की हिंसात्मक प्रवृत्ति को दूर करने के लिये श्रीकृष्ण-बलदेव ने ही जिनके रूप में अवतार लिया, ऐसे करुणावरुणालय श्रीगौराङ्ग महाप्रभु एवं श्रीनित्यानन्द महाप्रभु की जय हो ।।३।।

वाणीविनायकौ स्तौति आर्यावृत्तेन सादरम्—

सा जयति श्रीवाणी, भक्तिग्रन्थेषु मोदमाना या।
स जयति गणाधिराजो, विघ्नान् हन्तुं समर्थो यः ।।४।।

अब आर्यावृत्त से, आदरपूर्वक, श्रीवाणी विनायक की स्तुति करते हैं—उन श्रीसरस्वतीदेवी की जय हो जो कि, भक्ति-प्रतिपादक ग्रन्थों में ही प्रसन्न रहती हैं, अर्थात् कवि के द्वारा आह्वान करनेपर ब्रह्मलोक से पृथ्वीतलपर शीघ्रता से आते समय श्रीसरस्वतीदेवी को जो मार्ग का श्रम होता है वह क्या भगवद्गुण, नाम, रूप, लीलामय-सुधासरोवर में स्नान कराये बिना थोड़े ही दूर होता है ? अतः सरस्वतीदेवी का आह्वान करके तो, भगद्विषयक कविता ही बनानी चाहिये, वही उनकी प्रसन्नता की हेतु है, अन्यथा तो श्रीसरस्वतीजी पश्चात्ताप ही करती हैं कि, इस मूर्ख ने मुझको व्यर्थ ही कष्ट दिया कि, उत्तमश्लोक भगवान् के यश को त्यागकर प्राकृत पुरुष का गुणगान करता है। और जो सम्पूर्ण विघ्नों को दूर करने में परम समर्थ हैं, ऐसे श्रीगणेशजी महाराज की जय हो ।।४।।

विद्यागुरूनभिनन्दति अनुष्टुभा—

जयन्ति विद्यागुरवो, येभ्यो विद्यां समभ्यगाम्।
यद्दत्तविद्याविभवै-र्ग्रन्थान् प्राचीकटं बहून् ।।५।।

अब विद्यागुरुओं का अभिनन्दन करते है—यथा—जिनकी कृपा से मुझको व्याकरण, साहित्य, न्याय, वेदान्तादि शास्त्रों का लाभ हुआ, उन मेरे श्रीविद्यागुरुओं की जय हो। जिनमें से कतिपयों के नाम इस प्रकार हैं— पं० श्रीराधेश्यामजी शास्त्री (भरतपुर) पं० श्रीजगन्नाथजी शास्त्री (अयोध्या) पं० गोस्वामी श्रीरासविहारीजी शास्त्री (वृन्दावन) पं० श्रीसीतारामजी शास्त्री (वृन्दावन) जिनकी दी हुई विद्या के वैभव से मैंने, बहुत से ग्रन्थ प्रगट किये हैं। कतिपयों से नाम इस प्रकार हैं—१. "श्रीकृष्णानन्द महाकाव्य" श्लोक संख्या ८००। २. "श्रीराधारमण-शतक" श्लोक सं० १२०।

३. "श्रीभक्तनाम-मालिका" श्लोक सं० १३१। ४. "श्रीहरिप्रेष्ठ-महाकाव्य" श्लोक सं० २०००। ५. "सख्य-सुधाकर" श्लोक सं० २०८। ६. "श्रीवनमालिप्रार्थनाशतक" श्लोक सं० १३१। ७. "श्रीगुरुदेवस्मरणाष्टक"। ८. "श्रीरामकृष्ण-प्रातःस्मरण-स्तोत्र"। ९. दो श्लोक में श्रीचैतन्यलीलामृत"। १०. "श्रीराधिकास्तोत्र"। ११. श्रीवृन्दावनाष्टक"। १२. "श्रीगोवर्धनाष्टक" १३. श्रीरामकृष्णस्तोत्र"। १४. "श्रीयमुनाष्टक"। १५. श्रीरामभद्र-दशक"। १६. "श्रीविश्वनाथ-पंचक"। १७. "श्रीसत्यनारायणाष्टक"। १८. शास्त्रि-श्रीअमोलकरामाष्टक"। १९. "श्रीअनन्तदासाष्ट"। २०. श्रीराधाकृष्णाष्टक"। २१. "श्रीसागरधर्मपत्न्यष्टक"। २२. "वरवध्वोराशीर्वादात्मक-शुभसन्देश-त्रयम्"। २३. "अभिनन्दनपत्रम्"। २४. "भक्तिरसामृतसिन्धुविन्दु-टीका"। २५. "भागवतामृतकणिका-टीका"। २६. "माधुर्यकादम्बिनी-टीका"। २७. "वृन्दावनशतक-त्रयपर टीका"। २८. "श्रीगोपालचम्पू-टीका"। २९. "श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पू-टीका"। ३०. "श्रीपद्यावली-टीका"। ३१. "श्रीस्तवरत्ननिधि-टीका"।

प्रार्थनाशतकनिर्माणप्रयोजनमाह श्रीमत्कृपयैव च—

कविता-स्फूर्तिमेतु इति चाह—आर्याचतुष्केण—

भवति न भवतो ध्यानं, भगवन् ! मनसो ममाऽनवस्थानात्।
उदेतु कविता-सविता, कृपया जिह्वोदयाद्रौ मे ॥६॥

सरस्वती तव कृपया, विरिंचिहृदये यथैव प्रादुरभूत्।
प्रादुर्भवतु तथा मे, चिकीर्षोस्ते प्रार्थनाशतकम् ॥७॥

कृपां विना तव माधव !, नाहं लेखितुमीशो नु पादमपि।
अतः स्वयं ननु मत्तो, लेखय रुचिराणि पद्यानि ॥८॥

कविता यद्यपि ललिता, स्फुरति न हृदये मुकुन्द ! मे मलिने।
तदपि हृदि प्रेरणया, स्फोरयसि यथा लिखामि तथा ॥९॥

अब प्रार्थना-शतक के निर्माण का प्रयोजन कहते हैं और कविता स्फूर्ति भी आप की कृपा से ही हो जाय। यथा—हे भगवन् ! श्रीकृष्णचन्द्र ! मेरे मन के अत्यन्त चञ्चल होने के कारण, आपके श्रीचरणों का ध्यान तो बनता नहीं है, अतः आपकी अहैतुकी अनुकम्पा से, मेरी जिह्वारूपी उदयाचलपर, आपकी प्रार्थनामयी कवितारूप सविता (सूर्य) ही उदय हो जाय तो बहुत ही अच्छा हो; क्योंकि, कविता बनाने में मनकी वृत्ति स्वतः आप में स्थिर हो जाती है। और सृष्टि के आदिकाल में, आपकी कृपा से

हो, जैसे श्रीब्रह्माजी के हृदय प्राङ्गण में श्रीसरस्वतीदेवी का प्रादुर्भाव हुआ था, उसी प्रकार आपके 'प्रार्थनाशतक' बनाने की इच्छावाले मेरे हृदय में भी, शारदा का प्रादुर्भाव हो जाना चाहिये। हे माधव ! आपकी कृपा के बिना तो मैं, श्लोक का एक चरण भी लिखने में समर्थ नहीं हूँ' अतः आप स्वयं ही मुझ से मनोहर मनोहर पद्य लिखवाइये; और हे मुकुन्द ! यद्यपि अनादिकाल से अतिशय मलिन मेरे हृदय में, सुन्दर कविता की स्फूर्ति तो होती नहीं है, तथापि अन्तर्यामीरूपेण हृदय में विराजमान आप, जैसी स्फूर्ति करेंगे तैसी ही कविता लिखूँगा॥ अत्रार्थे प्रमाणं तु "वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा" (पा० सू० ३।३।१३१) इति बोध्यम् ॥६-९॥

वनमालिनं प्रथमं प्रार्थयते शार्दूलविक्रीडितेन—

जिह्वा मे तव नामकीर्तनमलं नेत्रद्वयं दर्शनं
कुर्यादङ्घ्रियुगं परिक्रमणकं हस्तद्वयं प्रार्चनम्।
चेतोऽङ्घ्रिस्मरणं यशःश्रवणकं कर्णौ च कं वन्दनं
राधावल्लभ ! पादपल्लवतले ते यातु मे जीवनम् ॥१०॥

हे भगवन् ! मेरी तो आपके श्रीचरणों में, यही प्रार्थना है कि—मेरी जिह्वा तो निरन्तर आपका नाम संकीर्तन किया करे, और दोनों नेत्र दर्शन किया करें तथा चरणयुगल आपकी परिक्रमा किया करें, एवं दोनों हाथ, आपका पूजन किया करें और चित्त आपके चारुचरणारविन्दों का स्मरण किया करै और मेरे दोनों कान, आपका विमल यश श्रवण किया करें एवं मस्तक वन्दन किया करे। हे श्रीराधावल्लभ ! मेरा जीवन तो आपके श्रीपादपल्लवतल में ही व्यतीत हो जाय ॥१०॥

मालिनी-वृत्तमेतत्—

जनुरिदमपि धीमन् ! निष्फलं मे प्रयाति
तव पदयुगयोर्हाऽदर्शनाद् दर्शनीय !।
सपदि सफलय त्वं दर्शनादात्मनो हे
प्रणतसुखद ! कृष्ण ! प्राणनिर्मञ्छनीय ! ॥११॥

हे धीमन् ! हे दर्शनीय ! आपके पदयुगल के बिना देखे तो मेरा यह जन्म भी निष्फल ही व्यतीत हो रहा है,—अतः हे शरणागतों को सुख देनेवाले ! प्राणन्योछावर करने योग्य ! श्रीकृष्ण ! अपने श्रीदर्शन से आप ही शीघ्र सफल कीजिये ॥११॥

इत उपजाति-वृत्तत्रयम्—

निरर्थकं जन्मगतं मदीयं, मया न दृष्टो हृदये मुरारिः।
अहो मुरारे! मधुकैटभारे!, स्वं दर्शयित्वा कुरु सार्थकं तत् ॥१२॥
असारसंसारसमुद्रमध्ये, तृष्णा-तरंगे खलु मोह-कूर्मे।
कामाह्वतद्वाडव-तप्यमानं, सखे! सखायं सुखिनं कुरुष्व ॥१३॥

अहह! मेरा, देवदुर्लभ यह मानुष जन्म भी व्यर्थ ही व्यतीत हो गया; क्योंकि, मैंने अपने हृदय में भी मुरारि भगवान् का दर्शन नहीं किया। अहो हे मुरारे! हे मधुकैटभारे! आप ही अपनी अहैतुकी कृपा से अपना दिव्य दर्शन देकर इसे सार्थक कर दीजिये ॥१२॥

और हे सखे! तृष्णारूपी तरङ्गों से व्याप्त, एवं मोहरूपी कछुआओं से युक्त असार संसाररूपी सागर के बीच में, कामरूपी समुद्रीय वडवानल से अत्यन्त तप्त हो रहा हूँ अतः आप ही अपने मुखचन्द्र की सुशीतल-चन्द्रिका का प्रदानकर, मुझ सखा को सुखी कर दीजिये ॥१३॥

उपेन्द्रवज्रा-वृत्तद्वयमग्रिमम्—

दुःखे सखे! त्वां सततं स्मरामः, सुखे तु मत्ता इव संभ्रमामः।
अतो न शान्ति क्षणमेव यामः, प्रपञ्चमञ्चे शयनं भजामः ॥१४॥

कुयोनिगर्ते चिरतः पतामः, कदापि नो नाम तवाऽऽलपामः।
तथा कृपादृष्टिभरेण पश्य, यथा पदाब्जं नु तवाऽऽश्रयामः ॥१५॥

हे सखे! श्रीकृष्ण! दुःख में तो हम आपका निरन्तर स्मरण करते हैं, परन्तु सुख में तो, मदमत्त की भाँति घूमते रहते हैं, अतः क्षणभर भी शान्ति का लाभ तो नहीं कर पाते, किन्तु प्रपञ्चरूपी मञ्चपर शयन करते रहते हैं ॥१४॥

आप से विमुखता के कारण ही अनादिकाल से कुयोनि गर्त में गिरते आ रहे हैं, और आपका शुभ एवं मङ्गलमय नाम तो कभी लेते ही नहीं हैं, अतः हे अकारण-करुणा-वरुणालय! आप हमको उसी प्रकार स्नेहभरी कृपादृष्टि से देखिये कि, जिस तरह हम आपके चारु-चरणों का आश्रय ग्रहण करलें ॥१५॥

द्रुतविलम्बितमेतत्—

जगदिदं रमणार्थ-मथात्मनो, विरचितं भगवन्! सहसा हरे!।
सुनटनं यदि न क्रियतेऽमुना, कथमितो न बहिः क्रियतेऽप्यसौ ॥१६॥

हे भगवान्! यह जगत्, आपने अपने खेलने के लिये ही रङ्गमञ्च की तरह, अनायास ही बनाया है। अतः हे हरे! मेरा तो आपसे यही विज्ञापन

है कि, यदि यह "वनमालिदास"-नामक नट, आपकी प्रसन्नता का उत्पादक नृत्य नहीं करता है तो, आप इसको अपनी चतुर्दशभुवनरूपी रङ्गशाला से शीघ्र ही बाहर क्यों नहीं कर देते, ऐसा करनेपर भी इसका परम हित ही हो जायगा। इस बात के रहस्य को आप जानो या ये जानें ॥१६॥

अग्रिमं पृथ्वीछन्दः—

कदापि न वयं तथा तव पदाब्जयुग्मं हरे !
स्मराम विषयान् यथा समनुभूतिमाप्ता हि ते।
अतः स्वसुखमाधुरीकणमपि क्षणं स्वादय
स्मरन्ति नहि केचन ह्यननुभूतमात्रं जनाः ॥१७॥

हे हरे ! हम प्रतिक्षण जिस प्रकार प्राकृत विषयों का स्मरण करते हैं, उस प्रकार आपके दोनों चरणारविन्दों का तो कभी भी स्मरण नहीं करते, कारण कि, उनका तो अनादिकाल से सम्यक् अनुभव हो चुका है, अतः हे प्राणप्रिय सखे ! अपनी सुख-स्वरूपमाधुरी के कण को भी क्षणभर चखा दीजिये, क्यों कि, यह बात अनुभव सिद्ध है कि, कोई भी जन, बिना अनुभव की हुई वस्तु का स्मरण नहीं करते हैं, अर्थात् आपके माधुर्य का अनुभव हो जाने के बाद, हम आपका निरन्तर स्मरण किया करेंगे, विषयों से स्वतः अरुचि हो जायगी; क्योंकि, अमृत से परितृप्त चित्त, चूके की खट्टी चटनी को थोड़े ही ढूँढ़ता है ॥१७॥

इयमपि पृथ्वी—

मनो मम दुरात्मतां त्यजति नो मुहुः शिक्षित
त्वमेव खलु शिक्षय स्ववश-विश्व-शिक्षागुरो !।
भृशं रहसि रोदिमि प्रबलप्रार्थनापूर्वकं
तथापि न शृणोषि किं प्रणतसौख्यदायिन् ! हरे ! ॥१८॥

हे भगवन् ! बारम्बार शिक्षा देनेपर भी, मेरा मन, अपने दुरात्मापन को नहीं त्यागता है, अतः आप ही इसको शिक्षा दीजिये; क्योंकि, सम्पूर्ण विश्व आपके ही आधीन है, अतः आप ही सम्पूर्ण विश्व के शिक्षा गुरु हो ! मैं तो एकान्त में प्रबल-प्रार्थनापूर्वक बहुत रोता हूँ, तथापि, हे शरणागतों को सुख देनेवाले हरे ! आप न जाने मेरी प्रार्थना क्यों नहीं सुनते ? ॥१८॥

मन्दाक्रान्ता-वृत्तमेतत्—

निद्रां प्राप्तः किमु किमथवा वृद्धतां त्वं गतोऽसि
कार्यग्रस्तः किमु किमथवा निर्दयत्वं गतोऽसि।

नो चेद् भ्रातः! कथमिह न मां मायया पीड्यमानं
हा श्रीकृष्ण! व्रजपतनय! त्रायसे स्वं सखायम् ॥१९॥

क्या आप घोर निद्रा में सो गये हो? अथवा वृद्ध हो गये हो? और क्या किसी विशेष कार्यान्तर में उलझ गये हो? अथवा निर्दयता ही धारण कर ली है क्या? हे सखे श्रीकृष्ण! हे व्रजराजकुमार! यदि ऐसा नहीं है तो, माया से परम-पीड़ित मुझ अपने सखा की रक्षा क्यों नहीं करते? ॥१९

शिखरिणी-विभातीयं शिखरिणीसमा—

त्वदीया माया मां दमयति सखायं तव सखे!
कुतो रक्षामस्याः सपदि मम सख्युर्न कुरुषे।
इयं त्वत्तो लज्जां व्रजति व्रजिताऽपीक्षणपथात्
त्वया त्वागन्तव्यं परमिह हि मे लोचनपथम् ॥२०॥

हे सखे! आपकी अतिशय प्रबल माया, आपके ही सखा मुझको पीड़ित कर रही है, सो आप, मुझ अपने सखा की इस से शीघ्र रक्षा क्यों नहीं करते? और हे सखे! आपको तो इससे रक्षा करने में तनिक भी परिश्रम नहीं करना पड़ेगा; क्योंकि, यह, आप से तो नवोढा की तरह लज्जित हो जाती है और आपके नेत्रों के सामने तो यह, देखते ही भाग जायगी; अतः आपको तो केवल मेरे नेत्रों के सामने आ जाना चाहिये ॥२०॥

एतदनुष्टुप् छन्दः—

प्रार्थनाकरणं धर्मः सखे! मम तु वर्तते।
तत्स्वीकरणमात्रं ते वर्तते नहि किं वद ॥२१॥

हे सखे! मेरा तो आपके श्रीचरणों में प्रार्थना करने का ही धर्म है, अब आप ही कहिये क्या उस प्रार्थना को स्वीकार करना मात्र भी आपका धर्म नहीं है? यदि है तो, शीघ्र ही रक्षा कीजिये ॥२१॥

आर्यप्रियेयमार्या—

सखिजन-जनित-सुखाब्धे!, बलबलवत्प्रेम-कनिष्ठता-निष्ठ!।
व्रजपा-व्रजप-सुखाय, कृत-बहुलीलोद्धरारं माम् ॥२२॥

हे सखे! आपने अपने सखाओं के लिये सुख का समुद्र उत्पन्न कर दिया, और बलदेवजी के प्रति जो आपका प्रगाढ़ प्रेम है, उसी के कारण आपकी उनके छोटे भाई होने में निष्ठा है और हे यशोदा और नन्दजी के सुख के लिये अनेकों लीला करनेवाले भगवन्! मेरा शीघ्र ही उद्धार कीजिये ॥२२॥

पृथ्वीसौख्यदायिनीयं पृथ्वी—

मनोरथ-पथातिगं दुरभिसन्धियुक्तात्मनां
सदाशययुजां सदा हृदि समर्पितं सादरम् ।
तथा कुरु कृपां हरे ! फणिफणार्पितं यत्पुरा
यथा तव पदाम्बुजं नयनमूलमायाति नः ॥२३॥

हे हरे ! बुरे अभिप्राय से युक्त मनवालों के तो जो मनोरथ पथ से भी अत्यन्त दूर है, और अच्छे अभिप्राय से युक्त जनों के हृदय में, जो सदैव से सादर समर्पित है एवं जो पहले कालियनाग के फणोंपर ताण्डव नृत्यपूर्वक अर्पित हो चुका है, वही चरणारविन्द, जिसप्रकार हमारे नेत्रों के सामने आवै उसी प्रकार कृपा कीजिये ॥२३॥

श्रेष्ठजातिरियमुपजातिः—

मम त्वभीष्टं वरमेतदेव, सखे ! सगोभिः सखिभिः समेतः ।
सराम आगत्य ममाक्षिमार्गे, मां संपरिष्वज्य कृतार्थय त्वम् ॥२४॥

हे सखे ! मेरा तो यही अभीष्टवर है कि, आप गैया ग्वाल-बाल और श्रीबलदेवजी के सहित, मेरे नेत्ररूपी मार्ग में आकर, मुझको गाढ़ालिङ्गन प्रदानकर कृतार्थ कर दीजिये ॥२४॥

मार्मिकमेतदनुष्टुप्-छन्दः—

गाढालिङ्गनदानेऽपि समर्थो नासि चेत्तदा ।
विहाय सर्वेश्वरतां दुर्बलाख्यां सखे ! भज ॥२५॥

यदि आप गाढ़ालिङ्गन प्रदान करने में भी असमर्थ हो तो हे सखे ! सर्वेश्वरता को त्यागकर, अपना नाम दुर्बल रख लीजिये । दर्शन के लोभी सखा की यह प्रणयोक्ति है, यही तात्पर्य है ॥२५॥

द्रुतविलम्बित-वृत्तम्—

अनवलोक्य कृपां मयि ते जना, उपहसन्ति मुधा कवयत्यसौ ।
यदि नृणामुपहासरुजां क्षतिं, लषसि देहि तु दृष्टिमहौषधम् ॥२६॥

हे माधव ! आपकी कृपा का लेश भी मेरे ऊपर न देखकर, लोग मेरी हँसी करते हैं कि, यह तो केवल वृथा कविता ही करता रहता है, अतः आप, यदि इन लोगों के उपहासरूपी रोग को नष्ट करना चाहते हैं तो, शीघ्र ही मुझे स्वदर्शनरूप-महौषध का दान दीजिये ॥२६॥

अनुष्टुभा पुनरभ्यर्थयते—

सर्वाकर्षक आनन्दो नामशब्दार्थ एव ते ।
सखायं स्वमपि भ्रातः ! कथं मां नैव कर्षसि ॥२७॥

हे भ्रातः !—"सबको खींचनेवाला आनन्द" यही तो आपके श्रीकृष्ण नाम का शब्दार्थ है, तथापि न जाने मुझ अपने सखा को भी आप अपनी ओर क्यों नहीं खींचते हैं ? ॥२७॥

आर्यायुगलमेतत्—

स्मृतिशक्तिर्मम विषयान्, नरकपातहेतूनपि विचिन्तयति।
तत्राऽहं किमु करवै, नरकारे ! शीघ्रमादिश मे ॥२८॥
स्मृतिशक्तिस्त्वदधीना, मत्तः स्मृतिरिति तवैव वचनेन।
कथमत आत्मपदाब्जं, स्मृतिस्वामिन् ! नैव स्मारयसि ॥२९॥

हे भगवान् ! मेरी स्मृति शक्ति तो, नरक पात के हेतुभूत विषयों का ही चिन्तन करती रहती है। हे नरकारे ! इस विषय में मैं, क्या करूँ ? सो आप शीघ्र ही आदेश दीजिये ॥२८॥ और हे सखे ! "मत्तः स्मृतिर्ज्ञान-मपोहनं च" (गीता १५।१५) इस आपके श्रीमुखवचन प्रमाण से सब की स्मृतिशक्ति तो, आपके ही अधीन है, अतः हे स्मृतिस्वामिन् ! आप अपने श्रीचरणारविन्दों का स्मरण क्यों नहीं कराते ? ॥२९॥

प्रथममुपगीतिवृत्तमत्रे आर्याद्वयं ज्ञेयम्—

प्रतिदिनविषयध्यानात्, सङ्गस्तेषूपजातो मे।
सङ्गात्कामः कामात्, क्रोधो जातो बलीयान् भोः ! ॥३०॥
क्रोधोदपि सम्मोहः, सम्मोहात् स्मतेर्विभ्रमो जातः।
स्मृतिभ्रंशाद् धीनाशः, प्रज्ञानाशात् प्रणष्टोऽहम् ॥३१॥
रागद्वेषवियुक्तै-,रात्मवश्यैः करणै-र्विधेयात्मा।
कृष्ण ! तथा कुरु करुणां, यथा प्रसादमधिगच्छेयम् ॥३२॥

हे भगवन् ! मेरी दशा तो यह है कि—प्रतिदिन विषयों के अनवरत ध्यान करने से, मेरी उन में आसक्ति हो गई है, आसक्ति से काम और काम की पूर्ति न होने से बड़ा भारी क्रोध उत्पन्न हो गया है ॥३०॥ क्रोध से सम्मोह और सम्पोह से स्मृति का विभ्रम हो गया है, स्मृति के भ्रंश हो जाने से बुद्धि भी नष्ट हो गई है और बुद्धि के नष्ट हो जाने से तो मैं, अपने वास्तविक स्वार्थ से नष्ट हो गया हूँ ॥३१॥ हे कृष्णचन्द्र ! अब तो ऐसी कृपा कीजिये कि, जिससे, रागद्वेष से विमुक्त स्ववशवर्ती इन्द्रियों के द्वारा, मेरा मन मेरे वश में हो जाय, और निर्मल हो जाय, और मैं, आप की प्रसन्नता का लाभ कर लूँ ॥३२॥

यस्य यादृशी व्रतसाधना तेन तादृशमेव फलं लब्धमित्याह कुलकेन श्लोक-पंचकेऽन्वयात्, तत्र प्रथमं शिखरिणीद्वयं तदनु ह्येका उपजातिः पश्चाच्छार्दूलविक्रीडितं द्रुतविलम्बितं च तथाहि—

पदेनैकेनैव स्थितमिह जले साधु भवति
हसित्वा वृष्टिं चाऽऽतपमपि च शीतं च सहते।
तदा प्रेष्ठस्येदं पदनयनहस्ताऽऽननमुखैः
शुभैरङ्गैः सार्धं कमलमुपमानं च लभते ॥३३॥

अयं चन्द्रः पूर्वं निवसति सदा शून्यसदने
तथा राहुग्रास-प्रमुखबहुकष्टं च सहते।
तदा प्रेष्ठस्य भ्रूनखरयुगसाम्यं ह्यनुभवन्
नवः पूर्णो भूत्वा प्रियवदनसाम्यं च लभते ॥३४॥

उभाविमौ यद्यपि कंजचन्द्रौ, सौन्दर्यद्रव्येण च द्रव्यवन्तौ।
तथापि मे नैव प्रियाननस्य, शोभात आधिक्यदशां प्रयातौ ॥३५॥

श्यामस्याऽस्य हि वारिदस्य विपुला भोः साधनापद्धति-
र्येनाऽयं सहते पुरा प्रियबियोगाग्निं महान्तं मुदा।
नैवाऽस्मै खलु रोचते त्वमहमित्याकारभेद-प्रथा
भूत्वा प्रेष्ठमयः समग्र उदितो विज्ञैर्घनश्यामलः ॥३६॥

इति विचारपरा खलु राधिका, कथयति स्वपतेर्विरहाकुला।
अधिगतं खलु तेन हि तादृशं, व्रतमिहाचरितं खलु यादृशम् ॥३७॥

जिसकी जैसी व्रत साधना उसने उतना ही फल प्राप्त कर लिया इसी बात को श्रीराधिकाजी के वचन द्वारा कहते हैं।

टीका पद्यमयी यथा—

एक पैर से खड़ा सदा जल में है रहता,
आतप वर्षा शीत सभी हँसकर है सहता।
तब प्रिय का पदपद्म पुनः करकंज कहाता,
बनकर नीरज नयन अम्बुजानन छवि पाता ॥३३॥

शून्य सदन के बीच सदा ही है यह रहता,
राहुग्रास का विपुल त्रासमय संकट सहता।
तब प्रिय के नख भ्रू से नव शशि उपमा पाता,
पूर्णचन्द्र हो फिर मुख का है साम्य कहाता ॥३४॥

दोनों ही हैं रंग रूप के धनी कहाते।
पर न अधिक प्रिय-आनन की छवि से बढ़ पाते ॥३५॥

पर इस काले बादल की साधना बड़ी है,
प्रिय-वियोग की झेली इसने आँच कड़ी है।

'मैं', 'तू', का कब भेद भाव है इसको भाता,
प्रियतम मय हो यह समग्र घनश्याम कहाता ॥३६॥

सोच रही थी यही विरह से व्याकुल राधा।
उसे मिला उतना जिसने जितना व्रत साधा ॥३७॥

प्रेमकलहो यथा श्लोक-चतुष्के तत्र प्रथमं शार्दूलविक्रीडितं वृत्तं तदनु वसन्ततिलकावृत्तं पश्चान्मन्दाक्रान्ता-द्वयमिति ज्ञेयम्—

श्रेष्ठाश्रेष्ठविभेदमत्र न मनाग् जानामि हे माधव !
कालं तर्हि कियन्तमस्मृतिपथे विस्मारयिष्यस्यहो।
पूजा-पाठ-तपो-जपादिकधनं ग्रन्थौ न मे वर्तते
पापस्यैव प्रपंचकेन नितरां प्राप्तासि पूर्णं हि माम् ॥३८॥

चिन्तां तथापि न करोमि प्रसन्न एव,
निर्वाहयिष्यसि न किं मम सर्ववोढा।
सम्बन्धतः सजललोचनयोर्घनाभ !,
मां स्वीकरिष्यसि बलादसि चेत्पयोयुक् ॥३९॥

सर्पाहर्तुर्यदि शिरसि ते नो मयूरस्य पक्षः
स्या उद्धर्ता ननु यदुपते ! दीनपक्षस्य तर्हि।
छिद्राऽऽधारा यदि न मुखयुक् स्याज्जडा वंशिका ते
छिद्रं तर्हि द्रुतमपहरेर्देशधर्मस्य कृष्ण ! ॥४०॥

वृद्धिं प्राप्तो यदि न वनमालाकृतो वन्यभावः
स्याद् भक्तास्ते मधुमथन ! हे नो म्रियेरन्ननन्याः।
त्रातुं शक्तो भवति नहि निष्किञ्चनं कंजनाभो
नीचास्त्वां हि व्रजपसुत हे ! नोज्ज्वलं कुर्युरेते ॥४१॥

प्रेम-कलहो यथा भाषाटीका पद्यमय—

बुरे भले का न भेदभाव कुछ भी है ज्ञात,
कबतक हाय ! और भ्रम में भुलाओगे।
जप तप पूजा पाठ की न पूँजी गाँठ में है,
पाप के प्रपंच से ही भरपूर पाओगे ॥३८॥

चिन्ता नहीं करता प्रसन्न रहता हूँ तो भी,
सब की निभाते क्या न मेरी ही निभाओगे ?
सजल दृगों के एक नाते से ही घनश्याम !
पानीवाले हो तो हाँ अवश्य अपनाओगे ॥३९॥

सर्पभक्षी मोरपक्षी का न पक्ष शिर होता,
तो अवश्य दीन दुखियों का पक्ष धरते ।
छिद्रभरी जड़ बाँसुरी न मुँह होती लगी,
देश धर्म के तो छिद्र क्षण में ही हरते ॥४०॥
वनमाला ने न वन्य भावना बढ़ाई होती,
तो अनन्य आप के न अन्य हो के मरते ।
कञ्जनाभ पीतपट जाने क्या अकिंचन को,
यही नीच तुम्हें कृष्ण ! उज्ज्वल न करते ॥४१॥

श्रीकृष्णदर्शनं प्रार्थयते तोटकेन—

व्रजराजकुमार ! सखे मम हे, त्वमुपैष्यसि कर्हि नु दृष्टिपथम् ।
जननी-जनक-व्रजवासिगते !, सबलः ससखः सहधेनुतते ! ॥४२॥

हे श्रीनन्द यशोदा प्रभृति व्रजवासियों की गति ! हे गोपाल ! हे सखे ! व्रजराजकुमार ! आप सम्पूर्ण सखामण्डल एवं श्रीबलदेवजी के सहित, मेरे नेत्रों के मार्ग में कब आवोगे ? ॥४२॥

शिखरिणी-वृत्तमेतत्—

निषादे सुग्रीवे दशमुखलवुभ्रातरि तथा
सुदाम्नि श्रीदाम्न्यर्जुन-सुबलयोर्मद्गुरुवरे ।
कृपा या सख्येन प्रकटमजनि प्राक् तव तु तां
कदा कर्तासि त्वं सुखिसुखद ! सख्यौ मयि सखे ! ॥४३॥

पूर्व पूर्व युगों में, सख्यभाव से, जो कृपा आपने मित्रवर्य निषादराजपर, श्रीसुग्रीवजीपर, विभीषणजीपर, सुदामा, श्रीदामा, अर्जुन, सुबलादि सखाओंपर एवं मित्रभाव प्रचारार्थ आप ही के द्वारा भेजे हुए, सख्य रसावतारस्वरूप आपके मित्रवर्य मेरे श्रीगुरुदेवजीपर, साक्षात् प्रकट करके दिखाई थी, हे सखाओं को सुख देनेवाले सखे ! उसी मित्रभावान्विता कृपा को, मुझ सखापर कब प्रगट करोगे ? ॥४३॥

अनुष्टुब्वृत्तमेतच्चतुष्टयम्—

योग्यताविरहाद् भ्रातः ! कथं मयि दयिष्यसे ।
दयिष्दसेऽपि नितरां मित्रभावेन साम्प्रतम् ॥४४॥
मित्रभावेन सम्प्राप्तं न त्यजेयं कथंचन ।
दोषो यद्यपि तस्य स्यादितिवाचं प्रमाणयन् ॥४५॥
मित्रभावेन सम्प्राप्ते कृपां मयि कुरुष्व भोः ! ।
कुरुष्व वा स्ववाचं तां मृषामार्गावलम्बिनीम् ॥४६॥

दोषाढ्यमपि मां कृत्वा निजपादावलम्बिनम् ।
सखे ! शीघ्रं हि स्वां वाचं कुरु सत्यावलम्बिनीम् ॥४७॥

हे भ्रातः ! योग्यता से रहित मुझपर आप कैसे दया करेंगे ? हाँ मित्र-भाव से तो मुझपर यथेष्ट कृपा करोगे, यह मुझे विश्वास है क्योंकि, "**निर्दोषो वा सदोषो वा वयस्यः परमागतिः**" (वा० रा० ४।८।८) इस प्रमाण से—अतः विभीषण शरणागति में कहे हुए—

"मित्रभाव से मो शरणि, आवै जो नर कोय ।
त्यागूं नहिं कौनिहू दशा, दोषवन्त हू होय ॥"

इन अपने ही वचनों को प्रमाणित करते हुए—मित्रभाव से आपकी शरणागति लेनेवाले मुझपर भी शीघ्र ही कृपा कर दजिये । अथवा पूर्वोक्त अपनी वाणी को मिथ्या-मार्गानुगामिनी कर दीजिये । हे सखे ! मेरा कहना तो यही है कि—मुझ दोषाकर को भी निजपदावलम्बी बनाकर शीघ्र ही अपनी वाणी को सत्यावलम्बिनी कर लीजिये ॥४४-४७॥

स्रग्धरा-वृत्तेन पुनरर्थयते—

भूलिङ्गो नाम पक्षी निगदति नितरां साहसं मा कुरुध्वं
हा पाषाणं भिनत्ति स्वयमिह तदपि व्याघ्रतुण्डाच्च मांसम् ।
तद्वत्पापं विनिन्दन्नपि नियतमहो पापमेव प्रकुर्वे
तस्मान्मौढ्याद् विषादं गतमिह कृपया कृष्ण ! मां रक्ष रक्ष ॥४८॥

पर्वतों में "भूलिङ्ग"-नामक एक पक्षी रहता है वह निरन्तर अपनी भाषा में यही कहता रहता है कि,—"साहस मत करौ" हाय ! हाय ! तथापि स्वयं पत्थरों को फोड़ता है और व्याघ्र के मुख से भी मांस को निकार ले जाता है, ठीक इसी प्रकार मैं भी परोपदेशाय पाप की निन्दा करता हुआ भी, निश्चितरूप से पाप ही करता हूँ । अतः हे श्रीकृष्ण ! मूढ़ता से परम दुःख को प्राप्त हुये मेरी, अपनी विश्वद्रीची कृपा से रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये ॥४८॥

मन्दाक्रान्तया पुनरप्याक्रन्दति—

प्रायश्चित्तं सुकृतिनि जने स्वल्पपापे प्रयुक्तं
शीघ्रं शुद्धं विरचयति तं प्रोक्तमित्थं च विद्भिः ।
दोषाक्रान्तं परमकुमतिं गौरिव व्याघ्रभीतेः
क्षिप्रं दूरं तदपि मतिमन् ! मामुदीक्ष्याऽपयाति ॥४९॥

अर्थात् प्रायश्चितमपि मत्तो बिभेति कथमतो मे समुद्धाराशा अतस्त्वमेव कृपया मां समुद्धरेति भावः ।

हे मतिमन् ! भगवन् ! प्रायश्चित्त के विषय में भी विद्वानों ने ऐसा कहा है कि,—यदि किसी पुण्यात्मा से भूल में कोई स्वल्प पाप बन जाय तो, तत्काल प्रयुक्त प्रायश्चित. उसको शीघ्र शुद्ध कर देता है, परन्तु दोषाक्रान्त परम कुमति मुझको देखकर तो वह प्रायश्चित्त भी इस प्रकार शीघ्र दूर भागता है कि—जिस प्रकार व्याघ्र के भय से गैया, अर्थात् प्रायश्चित भी मुझ से डरता है कि—इतने बड़े पापी को कैसे शुद्ध करूँ, अतः मेरे उद्धार की मुझे तो आशा भी नहीं है, अतः कृपा करके आप ही मेरा उद्धार कर दीजिये ।।४९।।

स्रग्धरा-छन्दसा पुनरर्थयते—

पूर्वं नाराधितोऽसि क्वचिदपि समये नाऽधुनाऽऽराधयामि
वाञ्छामि स्वस्य चेष्टं तदपि सुखद ! हे किन्न मे मूढतेयम् ।
दुर्बुद्धिं दुश्चरित्रं भवति च विमुखं मां यदि त्रायसे त्वं
तर्हि त्वेषा क्षमा ते जगति विजयते सर्वमेव क्षमं ते ।।५०।।

"हे सखिसुखद ! पहले जन्मों में तो मैंने, आपका आराधन कभी भी किया नहीं, अतः पूर्वानभ्यास के कारण अब भी आपका आराधन करता नहीं हूँ—तथापि अपना मनोरथ सिद्ध करना चाहता हूँ" यह क्या मेरी कोरी मूढ़ता नहीं है ? अपितु है ही, अतः हे भगवन् ! दुर्बुद्धि, दुश्चरित एवं आप से विमुख मुझको यदि आप, संसार-सागर से बचा लोगे तो, आपकी यह क्षमा, सम्पूर्ण जगत में सर्वोत्कृष्टरूपेण विख्यात हो जायगी; आपको तो सब कुछ करना योग्य है ।।५०।।

दोधकपंचकेनाऽधुनार्थयते—

शत्रुगणोऽपि तवाऽन्तिकमागाद्, द्वेषणभावनया वरलाभाद् ।
सख्ययुतोऽपि कथं न सखा ते, पार्श्वमुपैमि गता प्रभुता ते ।।५१।।

मामपराधिनमीश्वर ! मत्वा, नैव दयां कुरुषे यदि नत्वा ।
त्वच्चरणाम्बुजमापदि हित्वा, कस्य पुरः परिरोदिमि गत्वा ।।५२।।

कोऽपि न देववरः प्रतिभाता, त्वां तु विना सुहृदां सुखदाता ।
तत् त्वमहो सुहृदं सहदोषं, स्वीकुरु वा कुरु मां गतदोषम् ।।५३।।

दोषविहीनजनं मनुषे स्वं, शेष्व तदा सुखमेव नु शेषे ।
कोऽपि न तादृगुपैष्यति दृष्टौ, हे शरणागतवत्सल ! सृष्टौ ।।५४।।

द्रक्ष्यसि मां कृपया यदि कृष्ण !, कालमहो गणये न महान्तम् ।
द्रक्ष्यसि नो कृपया यदि तर्हि, कालमयं तृणमेव नितान्तम् ।।५५।।

हे प्रभो ! आपकी गति बड़ी विचित्र है, क्योंकि, आपके शत्रुगण भी, शत्रुभावना से त्वदाकारमय वृत्ति के लाभरूप बर के लाभ से आपके पास पहुँच गये, परन्तु न जाने क्या कारण है कि, सख्य-भाव से युक्त तुम्हारा सखा भी मैं, आपके पास नहीं पहुँच रहा हूँ, क्या आपकी प्रभुता कहीं चली गई है ? ।।५१।। हे ईश्वर ! यदि मुझको अपराधी मानकर दया नहीं करते हो तो, आपके चरणारविन्दों में शिर झुकाकर एवं आपत्ति में उनको त्यागकर, किस देवान्तर के सामने जाकर रोऊँ ।।५२।। क्योंकि, मुझे तो आपके बिना, मित्रों को सुख देनेवाला कोई भी देव, श्रेष्ठ नहीं प्रतिभात होगा । इस कारण से हे सखे ! या तो दोष सहित मुझ मित्र को स्वीकार कर लो या दोष रहित ही बना दो ।।५३।। यदि आप दोषहीन जन को ही अपना मानते हो तो, दुपट्टा तानकर सुखपूर्वक शेषजी पर सो जाइये ? क्योंकि, हे शरणागत-वत्सल ! आपकी त्रिगुणमयी सृष्टि में तो, ऐसा कोई भी दृष्टिगोचर नहीं होगा ।।५४।। हे श्रीकृष्ण ! यदि आप मुझको कृपा भरी दृष्टि से एकबार भी देख लेंगे तो मैं, महान् काल को भी कुछ न गिनूँगा । यदि कृपा भरी नजर से नहीं देखोगे तो, तृण भी मेरे लिये नितांत (विशेष) कालमय हो जायगा ।।५५।।

तोटकवृत्तमेतत्—

अपराधयुतेऽपि मयि प्रसभं, तव सा करुणा करुणाजलधे ! ।
वलते बलतोऽपि यतो मम भो, रसना तव नामरसं पिबति ।।५६।।

हे अपार करुणावरुणालय ! आपकी लोक शास्त्र-प्रसिद्ध वह करुणा, अपराध से युक्त मुझपर भी, हठात् अपना प्रभाव दिखा रही है, कारण कि जिसके बल से मेरी रसना आपके नानामृत का पान कर रही है ।।५६।।

शिखरिणीयम्—

कृपालेशो यस्मिन नरि तव मनागस्ति न सखे !
कथंकारं सोऽयं तव जपतु वै नाम विमलम् ।
अतस्तृष्णाव्यालप्रबलविषजीर्णं सुविकलं
कृपादृष्ट्या तूर्णं ननु गरुडकेतो ! सुखय माम् ।।५७।।

हे सखे ! जिस मनुष्यपर आपकी कृपा का लेश नहीं है वह, आपके विमल मङ्गलमय नाम को किस प्रकार जप सकता है । अतः हे गरुड़ध्वज ! तृष्णारूपी सर्प के प्रबल विष से जीर्ण एवं महान् दुखी मुझ को, अपनी कृपा-दृष्टि से शीघ्र ही सुखी कर दीजिये ।।५७।।

प्रमाणिका-वृत्तम्—

न मित्रमात्रदोष-दर्शनं त्वया विधीयते।
तथाऽपि नो कथं सखे! स्वपार्श्वमेष नीयते॥५८॥

हे सखे! शास्त्रों में मैंने, आपके श्रीमुख के वचनों से ही सुना है कि, आप मित्रमात्र के दोषों को नहीं देखते हो, तथापि इस अपने जन को आप अपने पास क्यों नहीं ले जाते, क्या कारण है?॥५८॥

पंचचामर-वृत्तमेतत्—

अजातपक्ष-पक्षिणामिवाऽस्ति मे दशा सखे!
न कर्तुमत्र कार्यजातमल्पमेव पारये।
मनोरथेन पीडितोऽस्मि दर्शनाह्वयेन ते
तथापि नो ददासि दर्शनं कथं दयानिधे!॥५९॥

हे सखे! मेरी दशा तो अजातपक्ष पक्षियों की-सी है, आप के कृपाबल के बिना तो, मैं अल्प भी कार्य नहीं कर सकता, परन्तु आपके 'दर्शन'-नामक मनोरथ से पीड़ित हूँ, तथापि हे दयानिधे! आप दर्शन क्यों नहीं देते?॥५९॥

इत: स्रग्धरात्रितयम्—

सेवा नो मानसी ते श्रमधनरहिता जायते कृष्ण! मत्त:
कुर्यां शारीरिकीं वा कथमिह भगवन्नालसोऽहं नितान्तम्।
चित्ते बाढं दुनोमि व्रजपतिसुतके हा मनो नैव लग्नं
लग्नं संसारमध्ये कथमिति भगवानुद्धरिष्यत्यहो माम्॥६०॥

हे श्रीकृष्ण! श्रम एवं धन से रहित सुलभता से हो जानेवाली आपकी मानसी सेवा भी, मुझ से नहीं होती है। तब शारीरिकी षोडशोपचारमयी आपकी पूजा, मैं, यहाँ कैसे करूँ? क्योंकि, भगवान्! मैं तो, अत्यन्त आलसी हूँ। चित्त में तो बहुत दुखी होता हूँ कि—हाय! श्रीव्रजराजकुमार में मेरा मन नहीं लगा, संसार के बीच में तो खूब लगा हुआ है, अत: न जाने भगवान् मेरा कैसे उद्धार करेंगे?॥६०॥

प्राचीना यादृशं ते भजनमनुलवं चक्रुरेवं न मत्त:
स्यान्नैराश्येन तस्माज्ज्वलति हि हृदयं भक्तिलेशालसस्य।
विश्वद्रीचीं कृपां ते भृशमनुभवत: शास्त्रत: साधुतो द्रा-
गाशाबिन्दूक्षितं मे हृदयमसुपते! शान्तिमाप्नोति पूर्णाम्॥६१॥

हे भगवन्! श्रीप्रह्लाद एवं अम्बरीषादि प्राचीन महापुरुषों ने, जैसा आपका निरन्तर भजन किया है, वैसा तो मुझसे त्रिकाल में भी हो नहीं

सकता; अतः महती निराशा के कारण, भक्ति के लेश में भी आलस्य करनेवाले मेरा हृदय, नितान्त जलता रहता है, परन्तु जब शास्त्र एवं साधुओं द्वारा ऐसा अनुभव करता हूँ कि,--आपकी कृपा तो भक्तमात्रपर समान ही है यथा--

पारसा झूठे भगत को, हरि राखत सनमान।
जैसे कुपढ़ पुरोहितहिं, देत दान यजमान॥

तब तो हे प्राणेश्वर ! शीघ्र ही आशारूप बिन्दु से सिंचित हुआ मेरा हृदय, पूर्ण शान्ति को प्राप्त कर लेता है ॥६१॥

जानन्भक्तिं पुमर्थादपि खलु सकलाच्चाधिकां च स्वतन्त्रा-
मन्येभ्योऽपि ब्रुवँस्त्वामहमिह न भजे तेऽकृपैवाऽत्र हेतुः।
तस्मात् क्षिप्रं प्रसीद प्रखरकरसुता-तीरदेशे विनम्रो
मूढोऽहं प्रार्थये त्वां कुरु मयि करुणां हे दयावारिराशे ! ॥६२॥

हे भगवन् ! आपकी प्रेमलक्षणा भक्ति तो, धर्म, अर्थ, काम, मोक्षरूप चतुर्विध पुरुषार्थ से भी अधिक एवं स्वतन्त्र है, ऐसे मैं, स्वयं जानता हुआ और दूसरों से कहता हुआ भी, स्वयं आपका भजन नहीं करता हूँ; इस विषय में आपकी अकृपा ही कारण है, अर्थात् जिस आपकी कृपा ने, मुझे भक्ति के स्वरूप समझने की एवं दूसरों को समझाने की शक्ति प्रदान की है, उसी कृपा से आप मुझे स्वयं भजन करने की शक्ति क्यों नहीं देते ? अतः हे दयासागर ! मैं मन्दमति, श्रीयमुनाजी के तीरपर विनम्र भाव से आपकी प्रार्थना करता हूँ कि—आप मुझपर शीघ्र ही, स्वभजनकारिणी कृपा कर दीजिये ॥६२॥

इयं पुष्पिताग्रा—

प्रतिपदममृताब्धिकोटि-मिष्टे, वहति झरे तव कृष्ण ! लीलिकायाः।
विषयगरलमेति मे तु पातुं, हृदयमहो करुणाढ्य ! रक्ष रक्ष ॥६३॥

हे श्रीकृष्ण ! प्रतिपद करोड़ों अमृत समुद्रों से भी मीठे आपके लीलारूप झरने—"इतिहास पुराणरूप पर्वतों से" प्रतिक्षण बह रहे हैं। परन्तु हे करुणाढ्य ! मेरा हृदय तो इतना दुष्ट एवं विवेक शून्य है कि, उन अमृतमय लीला झरनों को छोड़कर विषयरूप विष को पान करने के लिये क्षुद्र गर्तों में ही जाता रहता है, रक्षा करो ! रक्षा करो प्रभो ! ॥६३॥

मालिनी-वृत्तमग्रिमम्—

विषयवृषमिहात्तुं नीरसं याति नित्यं
मम तु हृदयवत्सो दुर्ममो मादृशां तु।

स्वसुखसरस-शष्पं स्वादयन्नीषदेतं
दमय करुण-यष्ट्या सत्वरं वत्सपाल ! ॥६४॥

हे भगवन् ! मेरा हृदयरूपी बछड़ा, नीरस विषयरूपी भुस को खाने के लिये नित्य ही जाता है, हम जैसे दुर्बलों के तो यह वश में आता नहीं, अतः हे वत्सपाल ! आप ही स्वसुखरूप सरस हरी-हरी घास का किञ्चित् आस्वादन कराकर करुणारूपी लकुट से इसका शीघ्र ही दमन कीजिये ॥६४॥

स्रग्धरा-वृत्तमिदम्—

पापानां कोटिभिस्त्वं मम यदि भगवन् ! खेदमायासि नूनं
बालैः सन्ताडिता वै कथमिह जननी मानुषी तोषमेति ।
सत्यं ब्रूहि व्रजेन्दो ! मयि तव रुडियं मेऽपराधेन केन
क्षान्त्वा तं मेऽपराधं सदयहृदय ! हे दर्शनं देहि शीघ्रम् ॥६५॥

हे भगवन् ! यदि आप मेरे करोड़ों अपराधों से दुखित होते हो तो निश्चय कहिये कि, बालकों द्वारा ताड़ित भी मानुषी माता, यहाँ सन्तुष्ट क्यों हो जाती है ? अर्थात् प्राकृत माता की अपेक्षा आप तो कोटि-वात्सल्य-जलधि हो, अतः आपको तो, स्व-स्वभावानुसार विशेष सन्तुष्ट हो जाना चाहिये । हे व्रजचन्द्र ! सत्य कहिये, मेरे ऊपर आपका यह कोप, मेरे कौन से अपराध से है । हे सदय-हृदय ! उस मेरे अपराध को क्षमा करके शीघ्र ही दर्शन दीजिये ॥६५॥

शालिनी-वृत्तमेतत्—

सेवां दृष्ट्वा यो ददातीह दाता, नो दाताऽयं प्रोच्यते भक्तिशास्त्रे ।
सेवाहीने किंच दीने मयीश !, प्रीतो भूत्वा देहि स्वं दर्शनं मे ॥६६॥

जो दाता, सेवा को देखकर तदनुसार फल देता है तो वह, भक्तिशास्त्र में दाता नहीं कहा जाता । अतः हे ईश ! सेवा से हीन दीन मलीन मुझपर प्रसन्न होकर अपना दिव्य दर्शन दे दीजिये ॥६६॥

वंशस्थ-वृत्तमेतत्—

स्वनायकं प्रोषितभर्तृका यथा, जने जने पश्यति तत्प्रतीक्षया ।
तथा कदा हा विकलाः प्रतीक्षया, त्वदीयया त्वामवलोकितास्महे ॥६७॥

हे भगवन् ! जिसका पति परदेश चला गया हो, ऐसी नववधू जैसे अपने पति की विशेष प्रतीक्षा से तदाकार होकर प्रत्येक जन में अपने पति का ही दर्शन करती है; ठीक उसी प्रकार आपके मिलने की प्रतीक्षा से व्याकुल होकर हम भी, दृष्टि गोचर होनेवाले प्रत्येक जन में आपका दर्शन

कब किया करेंगे। हा प्रभो! ऐसी मिलन प्रतीक्षामयी व्याकुलता शीघ्र प्रदान कीजिये ।।६७।।

अथ कमप्यनिर्वचनीयं मनोरथं श्रीकृष्णतः पूर्णमभिलषन् प्रार्थयते कुलकेन श्लोकपंचकेऽन्वयात् कुलकं ज्ञेयं कुलकलक्षणं यथा—

द्वाभ्यां युग्ममिति प्राहुस्त्रिभिः श्लोकैर्बिशेषकम् ।
कलापकं चतुर्भिःस्यात्तदूर्ध्वं कुलकं स्मृतम् ।।

तत्र प्रथमश्लोके गीतिच्छन्दो द्वितीये उपगीतिस्तृतीयचतुर्थयोरार्या पंचमे उद्गीतिरिति बोध्यम्—

विज्ञप्तिं शृणु मम भोः, शीघ्रं पूर्णां च तां सखे! कुरु मे।
मधुपुर्यामधिवसता, भवता व्रजमनु यदोद्धवः प्रहितः ।।६८।।

तदनु भवान् व्रजवार्ता-,श्रवणे धृततृष्णतां प्रथयन्।
प्रतिदिनमपगतदिवसान्, खिन्नः क्रमगणनया गणयन् ।।६९।।

उन्नतचन्द्रशालिकां, मनोरथपालिकामिव समारूढः।
उद्धवपथधृत-दृष्टि-,रकस्माच्च तमागतं पश्यन् ।।७०।।

उच्चैरुत्सुकताभाग्, जातः प्रसभं सखे! यथैव तथा।
अहमपि कदा नु कृष्ण!, त्वद्वार्ता-श्रवण-धृततृष्णः ।।७१।।

वृन्दावनमधितिष्ठन्, त्वद्वर्त्मनि निहितदृष्टिश्च।
त्वां समुपेत्याकस्मा-,दालिङ्ग्य च स्यां सखे! महान् मुदितः ।।७२।।

अब किसी अनिर्वचनीय मनोरथ की पूर्ति, श्रीकृष्ण से चाहते हुए प्रार्थना करते हैं—यथा—हे मेरे प्रिय! सखे! आपके श्रीचरणों में मेरी एक विज्ञप्ति है, उसे सस्नेह सुनिये और शीघ्र ही पूर्ण भी कर दीजिये, वह यह है कि—श्रीमथुराजी में वास करते समय, व्रजवासियों के विरह से व्याकुल होकर आपने अपने विरह से व्याकुल व्रजवासियों को सान्त्वना प्रदान करने के लिये, अपना सन्देश देकर जब श्रीउद्धवजी को भेजा था उस के पश्चात् आप व्रजवासियों के वृत्तान्त के श्रवण विषय में विशेष तृष्णा करते हुए और प्रतिदिन दुखित होकर बीते हुए दिनों को क्रम से गिनते हुए, एवं मनोरथ की पूर्ति स्वरूप उन्नत चन्द्रशाला (चौवारा) पर आरूढ़ होकर—उद्धवजी के आनेवाले मार्ग में दृष्टि लगाकर बैठे हुए और अकस्मात् श्रीउद्धवजी को आये देखकर जिसप्रकार आप सहसा उत्सुक, अर्थात् विशेष प्रसन्न हो गये थे, हे सखे! श्रीकृष्ण! ठीक उसीप्रकार मैं भी, आपकी मनोहर वार्त्ता श्रवण करने में विशेष सतृष्ण होकर, श्रीवृन्दावन में बैठकर आपके

आने के मार्ग में ही दृष्टि लगाकर बैठा हुआ, अकस्मात् आपको प्राप्तकर और भुजभर के आप से मिलकर कब विशेष प्रसन्न होऊँगा। हे सखे ! सख्यभावेन ऐसी कृपा शीघ्र ही कर दीजिये ॥६८-७२॥

शिखरिणी-द्वयकेन स्वाभिलाषमाह—

मनो मे दौरात्म्यं त्यजति न सखे ! किन्तु करवै
कुतो नैनद् वाढं द्रढयति भवान् पादयुगले ।
यदाऽस्याऽशक्तोऽसि त्वमपि भगवन् ! बन्धनविधौ
तदा को वा वक्ता तव जगति ना सर्ववशिताम् ॥७३॥

मदीयं ते भ्रातः ! पदकमलयोः प्रार्थनमिदं
मयि प्रीतस्त्वं चेन्मयि विमलसख्यं विनिवपन् ।
समं मात्रा पित्रा सखिभिरखिलैश्चापि हलिना
सखीभिर्दासैःस्वैर्नयनपथमायाहि तु तदा ॥७४॥

अब दो श्लोकों से अपनी अभिलाषा प्रगट करते हैं कि, हे सखे ! मेरा मन अपने दुरात्मापन को नहीं त्यागता है मैं, इस विषय में महान् दुखी हूँ क्या करूँ ? आप इस चञ्चल मेरे मन को अपने श्रीचरण युगल में क्यों नहीं दृढ़ कर लेते ? हे भगवन् षडैश्वर्य पूर्ण ! यदि इसके बाँधने में आप भी अशक्त हैं तो "अनन्त ब्रह्माण्ड आपके वश में हैं" ऐसा संसार में कौन मनुष्य कहेगा ? तात्पर्य यह है कि, जबतक मेरे चंचल मन को आप अपने वश में नहीं करोगे तबतक प्यारे सखे ! सर्ववशी न कहाओगे; मेरा तो यही मत है ॥७३॥ अतः हे भ्रातः ! आपके श्रीचरणारविन्दों में मेरी यही करबद्ध प्रार्थना है कि—यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो, मेरे हृदय में विमल सख्यभाव का बीजारोपण करते हुए, माता श्रीयशोदाजी, पिता श्रीनन्दजी श्रीसुबल श्रीदामा आदि सम्पूर्ण सखा, बड़े भ्राता श्रीबलदेवजी, श्रीराधा, ललिता आदि सखियाँ और रक्तक-पत्रक आदि सम्पूर्ण अपने दास—इत्यादि परिकर सहित एवं वंशी बजाते गैया चराते मन को लुभाते मेरे नेत्रों के सामने प्रत्यक्ष हो जाइये ॥७४॥

तूणकेन पुनरभ्यर्थयते—

हार्दिकोऽभिलाष एष मे कदा नु पूर्णतां
यास्यति व्रजेन्दुवर्य ! वर्यपूज्यपाद हे ।
अस्त्वनाद्यनन्त-संसृति-प्रवाह-संजयो
मानसं सदा सदाश्रिताङ्घ्रियुग्मकंजयोः ॥७५॥

हे श्रीव्रजेन्दुवर्य ! हे श्रीशिव ब्रह्मादि देव श्रेष्ठों द्वारा पूज्यपाद सखे ! मेरा यह हार्दिक मनोरथ कब पूर्ण होगा कि,—आदि अन्त रहित इस संसृति प्रवाह से तो मेरी विजय हो जाय और मेरा मन सदैव, उन दोनों चरणारविन्दों में लगा रहे, जिनका कि, सत्पुरुषों ने सदैव से आश्रय ग्रहण किया है ॥७५॥

अनुष्टुप्-चतुष्केण पुनरर्थयते—

यथाऽहं सात्विकैर्भावैः स्तम्भस्वेदादिभिर्हरे ! ।
अलंकृतशरीरः सन् स्मराणि त्वां तथा कुरु ॥७६॥

यथाऽस्खलितभावेन स्मरन्ती मम शेमुषी ।
त्वामवस्थासु सर्वासु शोभेतैव तथा कुरु ॥७७॥

अहन्ता च यथा श्रीमँस्तव सेवोपयोगिनि ।
सिद्धदेहे विशन्तीव विराजेत तथा कुरु ॥७८॥

ममता तव पादाब्ज-मकरन्द-पिपासया ।
भ्रमरीवाऽऽकुलास्तां मे तव पादाब्जयोर्दृढा ॥७९॥

हे हरे ! आप मुझपर ऐसी कृपा करें कि, जिससे स्तम्भ, स्वेद, रोमाञ्चादि अष्ट सात्विक भावों से अलंकृत शरीरवाला होकर प्रतिक्षण आपका स्मरण कर सकूँ ॥७६॥ और ऐसा सुयोग दीजिये कि जिस प्रकार मेरी बुद्धि, सब अवस्थाओं में अस्खलित भाव से, अर्थात् निरन्तर आपका स्मरण करती हुई ही सुशोभित हो जाय ॥७७॥ हे श्रीमन् ! मेरी अहन्ता, आपकी सेवा के योग्य दिव्य मित्रभाव से युक्त सिद्ध देह में प्रविष्ट होती हुई जैसे सुशोभित हो तैसे ही कीजिये ॥७८॥ और मेरी ममता, आपके चारु-चरणारविन्दों के मकरन्द रस की पिपासा (प्यास) से व्याकुल भ्रमरी की तरह आपके पाद-पद्मों में ही दृढ़ हो जाय ॥७९॥

शार्दूलविक्रीडितेन पुनरप्यर्थयते—

आसक्तिस्तव पादयोर्मम दृढा यस्मिन् दिने भाविनी
तस्मिन्नेव दिने ममोपरि कृपा तेऽस्तीति वेत्स्याम्यहम् ।
तस्मात् तद्दिनमानयाशु नितरामासक्तिदं पादयो-
र्हे श्रीमद्व्रजराजनन्दन ! सखे ! मां दीनमानन्दय ॥८०॥

हे श्रीमद्व्रजराजनन्दन ! आपके श्रीचरणों में, जिस दिन मेरी दृढ़ आसक्ति हो जायगी, उसी दिन "मेरे ऊपर आपकी कृपा है" ऐसा मैं जानूँगा। अतः आपके श्रीचरणों में गाढ़ासक्ति प्रदान करनेवाले उस दिन

के सुयोग को शीघ्र ही उपस्थित कीजिये। हा सखे ! मुझ दीन को शीघ्र ही आनन्दित कर दीजिये ॥८०॥

उपगीतिद्वयकेन स्वसखं प्रार्थयते—

रक्षितवान् व्रजलोकं, श्रीमद्गोवर्धनं धृत्वा।
मामपि गिरिवरधारिन् !, रक्ष तथेन्द्रियेन्द्रदुर्वृष्टेः ॥८१॥
गोवर्धनधर ! धर मां, म्रियमाणं स्मरपिशाचेन।
नहि को वा स्वं मित्रं, रक्षति रक्षा-समर्थः सन् ॥८२॥

हे श्रीगिरिवरधारिन् ! आपने द्वापर युग में, श्रीमद्गोवर्धन को धारण करके जिसप्रकार व्रज की रक्षा की थी, उसीप्रकार इन्द्रियों के इन्द्र (मनीराम) की, दुर्विषयों में आसक्तिरूप दुर्वृष्टि से मेरी भी रक्षा कीजिये ॥८१॥ हे श्रीगिरिधारीलालजी ! स्मर—अर्थात् कामरूपी पिशाच के द्वारा मुझ जकड़े हुए की रक्षा कीजिये। क्योंकि, संसार में ऐसा कौन है, जो कि, रक्षा करने में समर्थ होकर भी अपने मित्र की रक्षा नहीं करता ? फिर आप तो अधिक-साम्य-विमुक्त प्रभाववाले हो ॥८२॥

स्रग्धरया पुनरपि दैन्येनार्थयते—

प्रीतेर्गन्धोऽपि नास्ते मम तव पदयोर्हा सखे ! कृष्णचन्द्र !
सम्बन्धः सख्यगन्धः परमिह बलवाञ्श्रीमदाचार्यदत्तः।
तेनैव त्वं दयालो ! यदि मयि दयसे तर्हि ते मित्रभावो
मित्राणां सौख्यदायी कलियुगसमयेऽस्मिन्नपि स्याद् द्रढीयान् ॥८३॥

हा सखे ! कृष्णचन्द्र ! आपके श्रीचरणों में मेरा प्रीति का तो लेशमात्र भी नहीं है, परन्तु सख्यावतारस्वरूप हमारे श्रीगुरुदेव द्वारा दिया हुआ केवल मित्रभाव की सुगन्धि ये युक्त, परम बलवान् सम्बन्ध विशेष है। हे दयालो ! मित्रवर्य ! यदि उस परम विशुद्ध मित्रभाव के सम्बन्ध से ही, आप मुझपर दया करते हो तो आपके मित्रों को परमसुख देनेवाला मित्र-भाव, कलियुग के इस भयङ्कर समय में भी अत्यन्त दृढ़ हो जायगा ॥८३॥

शार्दूलविक्रीडितेन शार्दूलविक्रीतमिव तनोति—

देवानामपि दुर्लभेन सुलभेनाऽस्मादृशां भूतले
सख्याऽऽचार्यकृपालवेन भगवँस्ते मित्रभावेन मे।
चेतोऽन्तर्मुदमेति तेन नितरां ते स्यात् कृपा मय्यपि
वाढं ते सहचारिणां परिषदि स्यान्मे प्रवेशोऽप्यरम् ॥८४॥

हे भगवन् ! देवताओं को भी अत्यन्त दुर्लभ परन्तु हम जैसों को पृथ्वीतलपर भी—सख्याचार्यवर्य हमारे श्रीगुरुदेव की कृपा के लेशमात्र से

सुलभ, आपके मित्रभाव से मेरा चित्त अन्दर ही अन्दर अत्यन्त हर्षित होता है, इससे प्रतीत होता है कि, मुझ दीन दुखी आपके सखापर भी आपकी कृपा अवश्य होगी और आपके सखाओं की सभा में भी मेरा शीघ्र हो प्रवेश होगा, यह दृढ़ निश्चय है ।।८४।।

तूणकवृत्तेन पुनरर्थयते—

प्रीति-पूर्वकं भजेय ते सदा पदाम्बुजं
देहि बुद्धि-योगमीदृशं नु योगसम्भव ! ।
ज्ञानदीपकेन नाशय त्वमात्म-भावगोऽ-
ज्ञानजं तमोऽनुकम्पया मम स्वकीयया ।।८५।।

हे कर्म, ज्ञान, भक्ति आदि त्रिविध योगों के उत्पत्ति स्थान भगवन् ! अथवा भक्ति योग में ही प्रगट होनेवाले प्रभो ! मुझे भी आप कृपा करके ऐसा बुद्धियोग दीजिये जिससे कि, प्रीतिपूर्वक आपके चरणारविन्दों का भजन कर सकूँ । और अपनी अहैतुकी अनुकम्पा से मेरे हृदय में प्रत्यक्षरूपेण पधारकर ज्ञानरूपी दीपक से, अज्ञान से जायमान अन्धकार को नष्ट कर दीजिये ।।८५।।

स्रग्धरया पुनरप्यर्थयते—

मित्र ! श्रीकृष्ण ! प्रीत्यै तव भवतु ममैवाऽखिलं कार्यजातं
कार्यं तत्कारयेथा भवति हि तव मुद् येन मत्तो मुरारे ! ।
उर्ध्वं यं ह्युन्निनीषुस्त्वमु भवसि ततः कारयस्येव साधु
यन्त्रं तेऽहन्तु यन्त्री त्वमिति यदुचितं स्वेच्छया तत्कुरुष्व ।।८६।।

हे भैया श्रीकृष्ण ! देखो, मेरे सब कार्य, आपकी प्रसन्नता के हेतु हो जायँ और हे मुरारे ! मुझसे भी, आप, वही कार्य करवाइये जिससे आपकी प्रसन्नता हो, क्यों कि, आप, जिसको ऊपर के लोकों में ले जाना चाहते हैं तो, उससे अच्छा ही कार्य कराते हैं, मैं तो, आपका यन्त्र हूँ, आप इसके संचालक हो, अत: हे सखे ! जो उचित हो वही स्वेच्छा से कीजिये ।।८६।।

प्रहर्षिणीद्वयकेन स्वमित्रमर्थयते—

प्राप्य त्वां तव कृपया व्रजेन्द्रसूनो !, दुःखाढ्यां जनिमसतीं पुनर्न यायाम् ।
खिन्नोऽहं तिरवधि गर्भवासदुःखा-,च्छीघ्रं स्वां कुरु करुणां वयस्यवर्य ! ।।८७।।

हे श्रीव्रजेन्द्रसूनो ! आप मुझमर ऐसी कृपा कीजिये कि, आपकी कृपा से ही आपको प्राप्त करके पुनः दुखमय निकृष्ट जन्म को प्राप्त न होऊँ । क्योंकि, हे मित्रवर्य ! मैं, निरन्तर गर्भवास के दुःख से महान् दुखित हूँ ।।८७।।

कंसारे ! मम जनिरेव चेत्तवेष्टा, बारम्बारमु समसह्यकर्महेतोः ।
तर्ह्यास्तां मम मनसोऽपि वृत्तिरारात्, पादाम्भोरुहयुगयोस्तवैव मित्र!॥८८॥

हे कंसारे ! यदि मेरे अक्षम्य महान् अपराधों से, मेरा संसार में बारम्बार जन्म लेना ही आपको इष्ट है तो, मित्रवर्य ! इतना सुयोग तो कृपया अवश्य प्रदान करना कि—मेरे मन की वृत्ति तो आपके पदारविन्द-द्वन्द्व के समीप में लगी रहे ॥८८॥

वसन्ततिलकया पुनरर्थयते—

ज्ञात्वापि मे नु मनसः कुदशां मुरारे !
संशोधयस्यहह दीनतमस्य किन्नो ।
कामादिभी रिपुकुलैः शरणागतानां
हाऽनादरो मधुरिपो ! नहि तेऽनुरूपः ॥८९॥

हे मुरारे ! मुझ अत्यन्त दीन दुखी के मन की दुर्दशा को जान करके भी क्यों नहीं सुधारते ?। हे मधुरिपो ! आपके शरणागतों का क्षुद्र कामादि शत्रुओं द्वारा अनादर होना, आपके स्वरूप के अनुरूप नहीं है, हा सखे ! आप ही विचारिये ॥८९॥

शिखरिण्या प्रार्थयते—

तवाऽऽस्तां रागो मे पदकमलयोर्ह्री मधुरिपो !
विरागः संसारात् सपदि समपारादसुखदात् ।
न जाने कस्मान्मे हृदयमनिशं त्वां स्मरति नो
स्मृतिस्वामिन् ! स्वं मे स्वयमिह हृदि स्मारय सदा ॥९०॥

हे मधुरिपो ! मैं अत्यन्त दुखी होकर कह रहा हूँ कि—आपके श्री चरणारविन्दयुगल में, मेरी प्रीति हो जाय, और महान् दुःखप्रद, अपार संसार-सागर से शीघ्र ही विराग हो जाय। न जाने प्राचीन ऐसा कौन-सा पाप है कि, जिसके प्रतिबन्धक होने के कारण, मेरा मन, आपका निरन्तर स्मरण नहीं करता, अतः हे स्मृतिस्वामिन् ! आप स्वयं ही मेरे हृदय में, निरन्तर अपना स्मरण कराइये ॥९०॥

अनुष्टुब्वृत्तद्वयेन पुनरर्थयते—

ममास्ते यादृशी प्रीति-र्विषयेष्वनपायिनी ।
तादृशी त्वयि विश्वात्मन् ! कथन्नेति दुनोम्यहम् ॥९१॥

यथैव दिवसा यान्ति विषयान् स्मरतोऽसकृत् ।
तथा कदा गमिष्यन्ति स्मरतस्ते पदाम्बुजम् ॥९२॥

हे सर्वान्तर्यामिन् ! मैं, इस बात से बड़ा दुखी हूँ कि—मेरी जैसी विषयों में अनपायिनी प्रीति है, ऐसी प्रीति, आप में क्यों नहीं हुई ? ।।९१।। और जिस प्रकार विषयों का निरन्तर स्मरण करते हुए मेरे दिन व्यतीत हो रहे हैं, ऐसे ही निरन्तर आपके पदाम्बुजों का स्मरण करते हुए कब व्यतीत होंगे ? ।।९२।।

पुनरपि शिखरिणीवृत्तेनार्थयते—

कदा गोलोकीयां तव मधुरलीलां कलयतः
सखे ! सख्युर्घस्रा मम तु प्रियताऽस्राणि सृजतः ।
त्वया सार्धं व्रीडारहित-रसक्रीडां रचयतः
सुखं यातस्त्वत्तः सखिसुखद ! यास्यन्ति सुखतः ।।९३।।

हे सखाओं को सुख देनेवाले सखे ! आपकी दिव्य-गोलोक में होनेवाली, परममधुर विशुद्ध सख्यरस की लीला का दर्शन करते हुए, लीला दर्शन से जायमान प्रीति के कारण, प्रेमाश्रुओं का विमोचन करते हुए, आपके साथ संकोच रहित रसमयी सख्य क्रीड़ा को करते हुए, एवं आपसे ही परमसुख को प्राप्त होते हुए मेरे दिन, सुखपूर्वक कब व्यतीत होंगे ? ऐसा सुयोग, शीघ्र दीजिये सखे ! ।।९३।।

विधुन्माला इयमग्रिमा—

कामादीनां सच्छत्रूणां, वश्यो जातस्तेऽहं बन्धुः ।
कः स्वं बन्धुं नो शत्रुभ्यो, बन्धो ! पाति श्रेष्ठो वीरः ।।९४।।

हे भगवन् ! मैं आपका बन्धु (सखा) होकर भी, सज्जनों के शत्रु कामक्रोधादिकों के वशीभूत होगया हूँ । हे बन्धो ! सर्वश्रेष्ठ एवं प्रसिद्ध वीर, ऐसा कौन है ? जो कि, अपने बन्धु को, शत्रुओं से नहीं बचाता । **इति त्वयैव विचारणीयं सखे** ! ।।९४।।

तोटकद्वयेन स्वाभिलाषं प्रकटयति—

अधुनाऽऽव्रज नाऽऽव्रज वा व्रजरा-,जशिशो ! भविताऽपि तवाऽऽव्रजनम् ।
यदि भक्तजनास्तव सन्ति प्रिया, भविता हि कदापि तवाऽऽहसनम् ।।९५।।
अयि कृष्ण ! ममाऽसुखितस्य हृदः, सुखमस्य कदापि विधास्यसि किम् ।
कृपया निजया निजरूपसुधां, मम लोचनयोरपि धास्यसि किम् ।।९६।।

हे व्रजराजशिशो ! अब आप, मुझे दर्शन देने आइये या न आइये, परन्तु आपका आना तो कभी न कभी अवश्य ही होगा । और यदि आपको भक्तजन प्यारे हैं तो, कभी न कभी हमारे सामने भी आपका मधुर हास्य-परिहास अवश्य ही होगा ।।९५।। हे सखे ! श्रीकृष्णचन्द्र ! मेरे इस महान्

दुखित हृदय को भी आप कभी सुखित करोगे क्या ? और अपनी अहैतुकी कृपा से अपनी रूपसुधा को मेरे दोनों नेत्रों में भी धारण करोगे क्या ? ॥९६॥

अपूर्वाभिलाषमेवाह शिखरिणीयुग्मकेन—

अदृष्ट्वा लावण्यं व्रजति न दिदृक्षा नयनयो-
रनाकर्ण्य श्रोत्रं मधुरवचनं मे न मनुते ।
अनाघ्राय घ्राणं विमलवपुषस्ते परिमलं
धुनोत्येवात्मानं तव नतिविहीनं मम शिरः ॥९७॥

उरोऽनाश्लिष्य त्वां सहभुजयुगं कम्पमयते
त्वगप्येषा स्पर्शं तव न भजमाना न सुखमैत् ।
अपीत्वा मे जिह्वा तव चरणपङ्केरुहजलं
ममाऽङ्गानामेषां शमय सुविवादं मम सखे ! ॥९८॥

हे भगवन् ! आपको भी लुभानेवाले आपके लोकोत्तर लावण्य (सौन्दर्य) को न देखकर, मेरे नेत्रों की दिदृक्षा (देखने की इच्छा) शान्त नहीं होती है, और आपके परमधुर वचनों को न सुनकर, मेरे कान भी नहीं मानते हैं, एवं आपके दिव्य मङ्गलमय श्रीविग्रह की दिव्य सुगन्धि के सूँघे बिना, नासिका भी चुप नहीं रहती है और आपके चारुचरणारविन्दों में, साक्षात् नमस्कार किये बिना, मेरा मस्तक भी आपे को धुनता रहता है ॥९७॥ और मेरा वक्षःस्थल भी, आपका आलिङ्गन प्राप्त न करके दोनों भुजाओं के सहित, कम्पित होता रहता है । और यह मेरी त्वचा भी, आपके स्पर्श सुख को न प्राप्त कर महान् दुखित रहती है । और आपके चरणामृत का पान किये बिना, मेरी जिह्वा की भी वही दशा है । हे सखे ! मेरी तो आपके श्रीचरणों में यही प्रार्थना है कि—आप शीघ्र ही कृपया मेरे इन अङ्गों के सुविवाद को शान्त कर दीजिये ॥९८॥

पुनरपि स्वामिलाषमाह शिखरिण्या—

कदा ते पादाम्भोरुह-युगलसंवाहनमहं
करिष्ये रोहिण्यास्तनयबलभद्रस्य च मुदा ।
वयस्यैर्गानं वा तव समययोग्यं च व्यजनं
नियुद्धक्रीडां वा सखिसुखद ! गो-चारणमपि ॥९९॥

हे मित्रों को सुख देनेवाले मित्रवर्य ! हतभाग्यवाले मेरे भाग्य में, ऐसा सुयोग कब संघटित होगा कि, जब आपके चरणारविन्दद्वन्द का एवं रोहिणीनन्दन परमउदार श्रीबलभद्रजी के युगल चरणों का संवाहन (सेवन) करूँगा । तथा आपकी प्रसन्नतार्थ, सखाओं सहित पद्य-गान, समययोग्य

व्यजन (बीजना) और आपके साथ द्वन्द युद्धलीला एवं गोचारण लीला भी कर सकूँगा ? ॥९९॥

वाञ्छाविशेषं पुनरपि व्यनक्ति शिखरिणीत्रयेण—

यदा श्रीकृष्णो मे सबल उपयाताऽक्षिविषये
तदा स्वं द्रष्टुं मां परमसमर्थं कथयिता ।
सखे ! शीघ्रं पश्य त्वमिति वचनं शक्तिरचनं
स चैतादृक्कालो मम हतविधेरैष्यति कदा ॥१००॥

जिस समय, श्रीबलदेवजी के सहित श्रीकृष्णचन्द्र, मेरे नेत्रों के सामने उपस्थित होंगे तब, मुझको अपने दर्शन करने में परम असमर्थ जानकर, दर्शनशक्ति देनेवाले परम मधुर—"हे सखे ! शीघ्र ही मेरा दर्शन करो मैं, तुम्हारे सामने उपस्थित हूँ" ऐसे वचन कहेंगे । हाय ! मुझ हतभाग्य के भाग्य में, ऐसा मनोहर समय कब उपस्थित होगा ? ॥१००॥

इमे नेत्रे द्रष्टुं ह्यभिलषत आस्याम्बुजवरं
श्रुती श्रोतुं वाक्यं परममधुरं सर्वचतुरम् ।
परिष्वक्तुं वक्षःस्थलमपि मम त्वां सहभुजं
सखे ! सख्युर्वाञ्छां मम सपदि पूर्णां विरचय ॥१०१॥

ममाऽऽशानामासां मम सखिवरः श्रीहरिरहो
विनाश्य प्रारब्धं सपदि ननु पूर्तिं प्रथयिता ।
प्रभोस्तस्याऽशक्यं भवति किमु कार्यं सुरतरो-
रिवाशां सर्वेषां निजमनुगतानां रचयितुः ॥१०२॥

हे भगवन् ! ये मेरे दोनों नेत्र, आपके श्रीमुखारविन्द का दर्शन करना चाहते हैं, एवं दोनों कान, सबसे चतुर, परममधुर आपके वाग्विलास (वाणी) को सुनना चाहते हैं और मेरा वक्षःस्थल भी, भुजाओं के सहित गाढ़ालिङ्गन को प्राप्त करने की अभिलाषा करता है । हे प्यारे सखे ! मुझ अपने सखा की अभिलाषा को शीघ्र ही पूर्ण कर दीजिये ॥१०१॥ मेरी इन पूर्वोक्त आशाओं को मेरे प्यारे मित्रवर्य श्रीहरि, अपनी कृपा से मेरा प्रारब्ध नष्ट करके शीघ्र ही पूर्ण करेंगे—यह मेरा दृढ़ विश्वास है । और उन **"कर्तुमकर्तुमन्यथा कर्तुं समर्थ"** प्रभु के लिये कौन-सा कार्य अशक्य है अर्थात् अपने भक्तों के लिये सब कुछ कर सकते हैं । क्योंकि, वे तो कल्पवृक्ष की भाँति, अपने शरणागतों की सम्पूर्ण अभिलाषाओं को सदैव से पूर्ण करते आ रहे हैं ॥१०२॥

पंचचामरवृत्तेन स्वाशयमभिव्यनक्ति—

तवाऽऽप्तये न काऽपि जायते मुकुन्द ! साधना
भवत्यतीव दुस्तरा यतो मनोजबाधना ।
परन्त्वमुष्य किं करिष्यति द्विषः प्रतारणा
विमुक्तये ममाऽस्ति चेत् प्रभोस्तवैव धारणा ॥१०३॥

अब, कतिपय श्लोकों से अपना अभिप्राय व्यक्त करते हैं यथा—हे मुकुन्द ! आपकी प्राप्ति के लिये मुझसे तो कोई भी साधना नहीं बन रही है कारण कि माद्दृक् पामर पुरुष पशुओं से अत्यन्त दुस्तर, मनोज की बाधना प्रतिबन्धक-रूपेण उपस्थित हो जाती है। परन्तु सज्जनों के बैरी इस मनोज की प्रतारणा, हमारा क्या बिगाड़ सकेगी ? जब कि, सर्वसमर्थ मेरे मित्रवर्य आपकी ही धारणा, संसार सागर से मेरे मुक्त करने की है तो ॥१०३॥

स्वमनोनिरोद्धुं प्रार्थयते तोटकेन—

न मनो मम याति वशं प्रसभं, व्रजति व्रजराजशिशो ! विषभन् ।
तददो निवधान निजाङ्घ्रियुगे, कृपया निजया निजबाहुयुगे ॥१०४॥

हे श्रीव्रजराजकुमार ! मेरा मन मेरे वश में नहीं आता है, अपितु हठात् विषतुल्य विषयों में ही भागता रहता है। अतः कृपया आप ही इस चंचल चित्त को अपने श्रीचरणयुगल में अथवा श्रीभुजयुगल में, दृढ़ बाँध लीजिये ॥१०४॥

पंचचारवृत्तेन पुनरपि स्वाभिलाषमाह—

कदा प्रसन्नतां गतस्त्वमेत्य साग्रजः सखे !
स्वबाहुमध्यगं करिष्यसीह मामनारतम् ।
तथा कराम्बुजद्वयेन मस्तकस्य लालनं
मुखेन स्वस्य मे मुखस्य चुम्बनेन सत्क्रियाम् ॥१०५॥

हे सखे ! ऐसा समय कब आवेगा, जब कि—आप मुझपर प्रसन्न होकर मेरे समीप, श्रीबलरामजी के सहित पधार कर बहुत काल तक भुज भर के मुझ से मिलते रहोगे। और अपने करकमल युगल से मेरे मस्तक का लालन एवं अपने श्रीमुख से मेरे मुख का चुम्बनादि द्वारा सत्कार करोगे ॥१०५॥

स्रग्धरया स्वप्नेऽपि दर्शनाभिलाषमाह—

स्वप्नेऽप्यागत्य मह्यं विनिदिश भगवन्नेवमाशु प्रसन्न-
स्तस्मिन्कालेऽथ तस्मिञ्जनुषि तव मया संगमः स्यान्नितान्तम् ।

वाक्येनाऽनेन तेऽहं बहुजनिसमयं यापयिष्येऽतिशीघ्रं
कालःस्याज्जन्मनोऽस्य व्रजभव ! सुतरामन्यथा कल्पकल्पः ॥१०६॥

हे भगवन् ! आप कृपया शीघ्र प्रसन्न होकर, स्वप्न में भी आकर, मुझसे यों कह दीजिये कि—हे प्यारे सखे ! उस समय और उस जन्म में, तेरा मुझसे शाश्वतिक संयोग हो जायगा। वश, आपके इस वचनरूपी शम्बल के बलपर बहुत से जन्मों का समय भी, शीघ्र ही व्यतीत कर दूँगा, अन्यथा तो हे व्रजसंभव ! इस जन्म का समय भी कल्प के समान प्रतीत हो जायगा ॥१०६॥

वंशस्थेन पुनरप्यर्थयते—

अनुक्षणं ते चरणारविन्दयोः, स्मृतिःकुतो नो भवतीह माधव ! ।
विहाय कामानितरान्निरन्तरं, यथैव जायेत तथा विधीयताम् ॥१०७॥

हे माधव ! मेरा ऐसा कौन-सा प्राचीन पातक प्रतिबन्धक है जिससे कि—आपके चरणारविन्दों की स्मृति प्रतिक्षण नहीं होती। हे भगवन् ! इतर कामनाओं को त्यागकर जिसप्रकार निरन्तर आपकी स्मृति बनी रहे वैसी ही कृपा कीजिये ॥१०७॥

आर्याछन्दोऽभिरर्थयतेऽधुना—

विषयेभ्यो मम चेतो, दूरीभवितुं नहीच्छतीषदपि ।
अनादिकालत एव, त्वत्तो ननु विमुखताहेतोः ॥१०८॥
तस्मात् त्वं निजकृपया, तेभ्यो माधव ! हठात्परावर्त्य ।
निजपदयो-र्विनिवेशय, स्वल्पां निजमाधुरीं दत्त्वा ॥१०९॥
किं खलु सुदृढं पापं, पूर्वं निरवधि कृतं न जानीमः ।
त्वत्प्राप्तिराजमार्गे, भवति दृढाऽर्गलं यदद्यापि ॥११०॥

हे भगवन् ! मेरा चित्त, विषयों से किंचिद् भी दूर नहीं होना चाहता, इस विषय में तो, अनादिकाल से आपसे विमुखता ही कारण है ॥१०८॥ अतः हे माधव ! आप अपनी कृपा से हठपूर्वक उन विषयों से मेरे मन को लौटाकर—थोड़ी-सी निजानन्द माधुरी का दान करके अपने श्रीचरणों में निविष्ट कर लीजिये ॥१०९॥ हम नहीं जानते कि, हमने पहले जन्मों में ऐसा कौनसा सुदृढ़ पाप किया है, जो कि, आज भी आपकी प्राप्ति के राजमार्ग में अर्थात् भक्ति मार्ग में, सुदृढ़ अर्गल (अड़वंगा) अर्थात् विघ्न स्वरूप हो रहा है ॥११०॥

पुष्पिताग्रा-वृत्तेन स्वाभिलषितमाह—

शृणु मम विनयं विनीतबन्धो !, कुरु यदि रोचत एव मित्र ! तुभ्यम् ।
लघु लघु सुहसन् ममाऽक्षिमार्गे, त्वमु समुपेत्य परिष्वजस्व दोर्भ्याम् ॥१११॥

हे विनीतबन्धो ! पहले मेरी विनय सुनिये ! मित्रवर्य ! यदि आपको अच्छी लगे तो पूर्ण कर दीजिये, यथा—आप प्रेमपूर्वक मन्द-मन्द मुस्कराते हुए मेरे नेत्रों के सामने आकर, दोनों भुजाओं से मेरा आलिङ्गन कीजिये ॥१११॥

अनुष्टुप् छन्दः—

प्रार्थनाशतकानां ते, शतकं कुर्वतो मम ।
जन्मनां शतकं यातु, व्यर्थं नैकमपि प्रभो ! ॥११२॥

हे प्रभो ! आपके श्रीचरणों में, मेरी तो यही प्रार्थना है कि—आपके सैकड़ों प्रार्थनाशतक बनाते हुए तो, मेरे सैकड़ों जन्म भले ही व्यतीत हो जायँ, परन्तु व्यर्थ एक भी न जाय ॥११२॥

आर्यावृत्तेन नूतनाभिलाषमाह—

अयमपि ममभिलाषः, कृपया निजया नु पूर्यतां भगवन् ! ।
प्राणविसर्जनकाले, निःसरतु प्रार्थनापद्यम् ॥११३॥

हे भगवन् ! मेरी एक नवीन-अभिलाषा यह भी है कि—मेरे प्राण विसर्जन के समय में भी, मेरे मुख से आपकी प्रार्थनामय एक पद्य (श्लोक) अवश्य निकल जाय। इसको आप, अपनी अहैतुकी कृपा से ही पूर्ण कर दीजियेगा ॥११३॥

पुनरप्यार्यया वेणुश्रवणाभिलाषमाह—

यस्य निनादं श्रुत्वा, स्वयमपि मोहं भजसि श्रीकृष्ण ! ।
मामपि मोहय मित्र !, तं वेणुं वादयित्वैव ॥११४॥

हे श्रीकृष्ण ! जिसके माधुर्यमय मनोहर शब्द को सुनकर आप स्वयं भी विमोहित हो जाते हो, हे मित्रवर्य ! उसी वेणु को बजाकर मुझको भी कृपया विमुग्ध कर दीजिये ॥११४॥

नित्यलीलाप्रवेशाभिलाषमाह आर्यया—

गोचारणमपि कर्तुं, नित्यं यत्रैसि साग्रजः सखिभिः ।
मामपि कृपया गिरिधर !, तस्यां नय नित्यलीलायाम् ॥११५॥

हे भगवन् ! जिस दिव्यातिदिव्य गोलोक की नित्यलीला में आप श्रीबलदेवजी एवं सखाओं के सहित, नित्य ही गोचारण करने जाते हो, हे गिरिधरलालजी ! मुझको भी उसी गोलोकीय-नित्यलीला में प्राप्त कर लीजिये, यही आपकी महती कृपा होगी ॥११५॥

अनुष्टुब्वृत्ताभ्यां पुनरप्यर्थयते—

वाध्यमानोऽस्मि त्वद्भक्तो विषयै-रजितेन्द्रियः ।
प्रगल्भा दीयतां भक्तिर्यथा न स्यां पराजितः ॥११६॥

बालस्याऽव्यक्तया वाचा प्रसीदति यथा पिता।
तथा ममाऽनया वाचा प्रसीदतु भवानपि ॥११७॥

हे भगवन् ! मैं, प्राकृत-विषयों से अत्यन्त वाध्यमान (पीड़ित) हूँ अतएव आपका अजितेन्द्रिय भक्त हूँ परन्तु प्रभो ! कृपया ऐसी प्रगल्भा भक्ति दीजिये कि, जिसके प्रभाव से मैं, विषयों से पराजित न हो सकूँ ॥११६॥ हे मित्रवर्य ! आप मेरी इस प्रार्थनाशतकमयी वाणी से इस प्रकार प्रसन्न हो जाइये जैसे कि, पिता, बालक की तोतली बोलीपर भी रीझ जाता है ॥११७॥

स्रग्धरा-छन्दसा पुनरर्थयते—

कः प्राचीनोऽपराधो मम ननु बलवान् येन रुष्टोऽसि मित्र !
नो चेद् रुष्टोऽसि तर्हि व्रजपसुत ! कुतः प्रार्थनां नो शृणोषि।
क्षान्त्वा मन्तूननन्तान्निरवधि विहितान् रक्ष तान्तं सखायं
मित्रामोदप्रदायिन् ! नय निजसविधं मायया पीड्यमानम् ॥११८॥

हे मित्र ! मेरा ऐसा कौन-सा प्राचीन बलवान् अपराध है, जिससे कि, आप मुझपर रुष्ट (अप्रसन्न) हो रहे हो। यदि रुष्ट नहीं हो तो हे व्रजराजकुमार ! मेरी इस विनम्र प्रार्थना को क्यों नहीं सुनते ? हे मित्रों को सुख देनेवाले सखे ! निरन्तर किये हुए अनन्त अपराधों को क्षमा करके, महान् दुखित मुझ अपने सखा की रक्षा कर लीजिये और माया से पीड़ित मुझको अपने पास बुला लीजिये ॥११८॥

शतकोक्तभावानां पूर्तिमभिवाञ्छति आर्यया—

कृपया यया मुरारे !, पूरितमेतन्नु प्रार्थनाशतकम्।
पूरयसि कथं न तया, शतकोक्तं भावनाशतकम् ॥११९॥

हे मुरारे ! जिस अपनी अहैतुकी कृपा से, यह 'प्रार्थनाशतक', आपने पूर्ण किया है उसी कृपा से, इस शतक में कहे हुए भावना-शतक को भी, पूर्ण क्यों नहीं करते ? ॥११९॥

अनुष्टुभा पूर्वोक्तमेव विशदयति—

शतकोक्ता इमे भावास्त्वयैव हृदि भाविताः।
स्वयं भावितभावानां स्वयं पूर्तिरथोचिता ॥१२०॥

पूर्वोक्त अर्थ को ही स्पष्ट करते हैं यथा—हे सखे ! इस शतक में कहे हुए ये सब भाव, आपने ही मेरे हृदय में उत्पन्न किये हैं, अतः स्वयं उत्पादित भावों की पूर्ति भी, आप को स्वयं करनी ही उचित है ॥१२०॥

शतकान्ते स्वेष्टदेवं प्रणमति आर्यया—

हृदि यस्य प्रेरणया, व्यलिखं यस्यैव प्रार्थनाशतकम् ।
तस्मै नमोऽस्तु हरये, सबलाय वयस्यवर्याय ॥१२१॥

अब, शतक के अन्त में अपने इष्टदेव को नमस्कार करते हैं, हृद्गत अन्तर्यामीरूप जिनकी प्रेरणा से, मैंने, यह प्रार्थनाशतक लिखा, उन्हीं मेरे मित्रवर्य श्रीहरि को श्रीबलदेवजी के सहित मेरा प्रणाम है ॥१२१॥

सदोषत्वेऽपि निर्दोषत्वं काव्यस्याह—

दोषा यद्यपि भूयांसः शतकेऽत्र भ्रमादयः ।
गुणायन्ते स्म ते सर्वे तथापि हरिकीर्तनात् ॥१२२॥

"दोष-सहित होनेपर भी, यह काव्य, निर्दोष है" इस बात का प्रतिपादन करते हैं, यथा—हे सज्जनो ! यद्यपि इस प्रार्थनाशतक में, भ्रम प्रमादादि और काव्यगत भी बहुत से दोष हैं तथापि वे सब, इस काव्य में अनवरत श्रीहरि का कीर्त्तन होने के कारण, गुणों का-सा ही आचरण कर रहे हैं अर्थात् गुण ही हो गये हैं। कारण कि, सच्छास्त्रों में इस विषय का इसी प्रकार निर्णय है कि—जिस काव्य में यथेष्ट तो शब्दालंकार अनुप्रास यमकादि हों और अर्थालंकार उपमा, अतिशयोक्ति आदि हों तथापि, जगत् को परम पवित्र करनेवाले श्रीहरि के नाम गुणादि का जिसमें किंचिद् भी यदि वर्णन न हो तो वह काव्य, परमहंसों के असेव्य काकतीर्थ ही बताया है। और जिस काव्य में रचना भी शिथिल हो, एवं अलंकारों का भी सर्वथा अभाव हो, परन्तु जनता के पापों को दूर करनेवाले भगवान् के यश से अंकित, नामों का उच्चारण यदि पद-पदपर हुआ है तो, वही सत्सेव्य परम कल्याण कारक वाक्य-विन्यास अर्थात् श्रेष्ठ काव्य है। कल्याणेच्छुकों को उसका ही सेवन करना चाहिये। श्रीहरि ने भी, श्रीउद्धवजी के प्रति एकादशस्कन्ध में यही कहा है कि हे उद्धव ! मेरे नाम, रूप, गुण, लीला आदि के वर्णन से रहित जो वाणी है वह वन्ध्या है, बुद्धिमान् को ऐसी वन्ध्या वाणी कभी भी धारणा नहीं करनी चाहिये ॥१२२॥

शतकं चैतत्स्वगुरुकरकमलयोः सादरं समर्पयति वसन्ततिलकावृत्तेन—

आचार्यवर्यकरपङ्कजयुग्ममध्ये
प्रेम्णाऽर्प्यते शतकमेतदु तत्कृपाप्तम् ।
गोलोकगोऽपि सुविलोक्य च दिव्यदृष्ट्या
दृष्ट्याऽऽर्द्रया स्वकरुणां मयि स प्रकुर्यात् ॥१२३॥

अब, इस शतक को मित्रभाव-संवलित ज्ञान भक्ति, शास्त्रावलोकन की शक्ति के देनेवाले अपने श्रीगुरुदेव के कर कमलों में सादर समर्पित करते हैं—श्रीगुरुदेवजू की कृपा से ही प्राप्त इस "प्रार्थनाशतक" को मैं, श्रीगुरुवर्य के युगल करकमलों में ही प्रेमपूर्वक अर्पण करता हूँ इस समय, दिव्यधाम श्रीगोलोक में विराजमान भी मेरे श्रीगुरुदेव, दिव्यदृष्टि से इसका अवलोकन करके, स्नेहमयी दृष्टि से मेरे ऊपर अपनी अहैतुकी कृपा करें। उनके श्रीचरणों में, मेरी यही करबद्ध प्रार्थना है ॥१२३॥

कार्पण्येन स्वस्वरूपं स्वगुरवे निवेदयति शिखरिण्या—

न ते वाक्ये श्रद्धाऽभवदहह किं पूर्तिविषये
न चाऽकार्षं किंचित् तव प्रियकरं कार्यममलम्।
न जाने आचार्यप्रवर ! मम का स्यान्ननु गतिः
समेषां शिष्याणामिव कुलकलङ्कं कलय माम् ॥१२४॥

हे श्रीगुरुदेव ! मैं अपने स्वरूप का आपके सामने क्या वर्णन करूँ ? मुझ हतभागे की तो यह दशा है कि—आपके वचनों का पालन करना तो दूर रहा उनमें मेरी हाय ? श्रद्धा भी नहीं हुई। और आपको प्रिय लगने-वाला कोई निर्मल कार्य भी मैंने नहीं किया, अतः हे आचार्यप्रवर ! मैं, नहीं जानता कि, मेरी क्या गति होगी ? आप तो मुझको अपने सम्पूर्ण शिष्य कुल का कलङ्क ही समझिये ॥१२४॥

निजाचार्यस्वरूपं दर्शयति शिखरिण्या—

गुरूणामस्माकं हरिचरणविश्वासविषये
वदामः किं मूढाः खलु वयमविश्वासविभवाः।
अभूवन् विश्वासा इव जगति मूर्त्ता प्रकटिता-
स्तथाकर्तुं मादृग् जगति मनुजः कः प्रभवति ॥१२५॥

अब, अपने श्रीगुरुदेव के स्वरूप का दिग्दर्शन कराते हैं, यथा—हे सज्जनो ! अविश्वास ही जिनका वैभव है ऐसे महामूढ़ हमलोग, हमारे श्रीगुरुदेव के, श्रीहरिचरणों में विश्वास के विषय में क्या कहें ? वे तो मूर्तिमान् विश्वास ही जगत में प्रगट हुए थे। हमारे जैसा कुटिल-जन इस जगत में, श्रीहरिचरणों में उनका-सा विश्वास करने को कोई भी समर्थ नहीं है ॥१२५॥

पुष्पिताग्रा-वृत्तद्वयेन स्वगुरुमेव स्तौति—

गुणगणगणनां विधातुमीश-,स्तव किमु दीनजनोऽयमेकजिह्वः।
सुरतरुतलमेत्य किं दरिद्र-,मतिरवगच्छति तं यथावदीश ! ॥१२६॥

गुरुवर ! विधुरे भवाटवीतो, मयि हतमेधसि सा कृपा विधेया ।
निरवधि ययका पदाब्जयोस्ते, मम रतिरस्तु च रामकृष्णपादे ॥१२७॥

हे सर्वसमर्थ श्रीगुरुदेव ! एक जिह्वावाला यह दीनजन, क्या आपके गुणों की गणना कर सकता है ? अपितु नहीं। दरिद्र-बुद्धिवाला मनुष्य, कल्पवृक्ष के नीचे जाकर भी, क्या उसके स्वरूप को यथार्थ रूप से जान लेता है ? ॥१२६॥ हे गुरुवर ! संसाररूप वन में, अनादिकाल से भ्रमण करने से, महान् दुखित एवं मन्दबुद्धि मुझपर भी, वह कृपा कीजिये जिससे कि, निरन्तर आपके श्रीचरणों में एवं चिरसुहृद् श्रीराम-कृष्ण के श्रीचरणों में मेरी अटल प्रीति हो जाय ॥१२७॥

शार्दूलविक्रीडित-द्वयेन तमेव स्तौति—

काठिन्येन तवाप्तिरद्य घटिता संसेविते शङ्करे
वाञ्छा यादृशदेशिकस्य समभूत् तादृक् त्वमाप्तो मया ।
सच्छास्त्राणि सनैगमानि हृदये कञ्जानि वाप्यामिव
नित्यं यस्य लसन्ति तस्य तव को मादृग् गुणान् कीर्तयेत् ॥१२८॥

श्रीशंकरजी की सेवा करनेपर बड़ी कठिनता से, आज आपकी प्राप्ति हुई है। जैसे श्रीगुरुजी की इच्छा थी वैसे ही आप मुझको मिल गये। जिनके हृदय में वेद, पुराणादि सब शास्त्र, सरोवर में कमलों के समान, नित्य ही खिले रहते हैं, ऐसे आपके गुणों को यथार्थरूप से मुझ जैसा पामर, कैसे कह सकता है ? ॥१२८॥

हे श्रीदेशिकवर्य ! वर्यचरित ! प्रज्ञावधे ! ज्ञावधे !
मिथ्यादृष्टिमहीध्रपक्षभिदुराऽशान्ताय शान्तिप्रद ! ।
मादृक्पामरजीवभीषणपशोर्मोक्षाय दीक्षागुरो !
मां दुष्टप्रवरं समुद्धर विभो ! संसारवारां निधेः ॥१२९॥

हे श्रीगुरुवर्य ! आपका चरित्र बहुत ही सुन्दर है ! आप प्रज्ञा की अवधि हैं ! और ज्ञान की भी अवधि है ! और नास्तिकतारूपी पहाड़ के पक्ष छेदन करने को तो आप, वज्र के समान ही हो ! और अशान्त पुरुषों को भी शान्ति प्रदान करनेवाले हो ! और मेरे जैसे पामर जीव ही भयंकर पशु तुल्य हैं, उनकी मोक्ष के लिये भी आप बद्धपरिकर हैं ! । हे विभो ! मुझ दुष्टप्रवर का, संसार-सागर से उद्धार कर दीजिये ॥१२९॥

ग्रन्थपूर्तिकालमभिधत्ते वसन्ततिलकया—

शून्येन्दुशून्यनयनैश्च मिते हि वर्षे, श्रीविक्रमार्कनृपतेरपि माघमासे ।
वृन्दाटवीवसतिलब्धकवित्वशक्ति-,रेतल्लिलेख शतकं वनमालिदासः ॥१३०॥

श्रीवृन्दावनवास की महिमा से ही जिसको कविता शक्ति का लाभ हुआ है, उसी "वनमालिदास" ने श्रीवृन्दावन में ही एकान्त में बैठकर—वि० सं० २०१० के माघ मास में इस "श्रीवनमालिप्रार्थनाशतक" को लिखकर सम्पूर्ण किया है ॥१३०॥

पठन्ति ये नरा नित्यं प्रार्थनाशतकं त्विदम् ।
भावनां पूरयँस्तेषां तेषु कृष्णः प्रसीदति ॥१३१॥

जो मनुष्य, श्रद्धा-भक्ति-पूर्वक इस प्रार्थनाशतक का, नित्यप्रति पाठ करते हैं, उनकी सम्पूर्ण भावना को पूर्ण करते हुए श्रीकृष्ण, उनपर परम प्रसन्न हो जाते हैं ॥१३१॥

इति श्रीनिखिलशास्त्रपारावारपारदृश्व-सख्यावताराष्टोत्तरशत-
स्वामि-श्रीकृष्णानन्ददासजी-महाराज-शिष्येण काव्यतीर्थेन
घटिकाशतकेन महाकविना श्रीवनमालिदासशास्त्रिणा
विरचितं भाषाटीकासहितं
"श्रीवनमालिप्रार्थनाशतकं" सम्पूर्णम्

अथ सूक्ष्मं श्रीचैतन्यलीलामृतम्

अद्वैतार्थनया पुरा तु जननं शच्यां जगन्नाथतः
पश्चादध्ययनञ्च कीर्तनमहायज्ञस्य सञ्चारणम् ।
काजीशाक्तमनुष्यमाधवजगन्नाथद्विजोद्धारणम्
सन्न्यासग्रहणं ततश्च भगवत्प्रेम्णा जगत्तारणम् ॥१॥

षड्गोस्वामिगणं ततः स्वकृपया प्रापय्य वृन्दावनम्
गूढस्थानविघाटनं तदनु भक्तेस्तावकोद्घाटनम् ।
नीलाद्रिस्थितसार्वभौममतमायावादिनां खण्डनम्
इत्युक्तं वनमालिदासशिशुना चैतन्यलीलामृतम् ॥२॥

निर्माणकाल:—
वि० सं० २००२ भाद्रपद कृष्णजन्माष्टमी ।

❁ श्रीगुरुदेव-प्रार्थना ❁

[ले०—श्रीअमरचन्दजी गौड़, मु० बुडाला, जि० जालन्धर]

गुरुदेव तुम्हीं सरवस मेरे, सब झूँठा जग का नाता है।
है आप बिना अब कौन मेरा, कोई पिता नहीं नहि माता है॥
यह देश विराना लगता है, घरवार न हमें सुहाता है।
यह मन मलिन्द थिर नहीं होता, पदपङ्कज को ललचाता है॥
श्रीवृन्दावन की भूमि में, मेरा भी रहना हो जावे।
हो जावे जन्म सुफल मेरा, चरणों में रहना हो जावे॥
यह प्रथम आपका कहना है, गुरुजी सों बात छिपावे ना।
सन्देह-रहित सब कह देवै, जो बात समझ में आवे ना॥
यह लगन लगी रहती हरदम, चरणों के बीच निवास करूँ।
आँखों से रूप-सुधा पीकर, मन प्रेम के सिंधु डुवाया करूँ॥
यह बड़े भाग्य से योग हुआ, चरणों से परे हटाना ना।
है प्यास आपके दर्शन की, बिन दर्शन के तड़पाना ना॥
शेष हैं दिन जो जीवन के, इन चरणों ही में कट जावें।
गुरुदेव कृपा की कोरों से, सब दुःख जन्म के मिट जावें॥
बाँह पकड़ कर तुमने ही, कितनों को जग में तारा है।
मुझ दीन हीन पै कृपा करो, ये ही सन्देश हमारा है॥
यह सीस गुरु के चरणों में, मैंने अब अर्पण कर दीन्हा।
इसको अब परे हटाना ना, जो सीस चरण पर धर दीन्हा॥
असली है अर्ज यही मेरी, मुझे अपने पास बुला लेना।
इस 'अमरचन्द' को दास समझ, पदपङ्कज से लिपटा लेना॥

श्रीराधारमणो जयति

श्रीरामकृष्णौ विजयेतेतमाम्

श्रीमन्माध्वगौडेश्वरौ विजयेतेतमाम्

श्रीराधारमणशतकम्

निखिलशास्त्रपारावारपारदृश्व-सखराऽवताराष्टोत्तरशत-स्वामि
श्रीकृष्णानन्ददासजीमहाराज-शिष्येण श्रीगोपालचम्पू-
श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पू-श्रीपद्यावली-श्रीभक्ति-
ग्रन्थमाला-श्रीस्तवरत्ननिधि-प्रभृतिप्राचीन-
ग्रन्थानां टीकाकारेण काव्यवेदान्त-
तीर्थेन घटिकाशतकेन महाकविना
श्रीवनमालिदासशास्त्रिणा
प्रणीतम् ।

●

तेनैवाऽनूदितं संशोधितं प्रकाशितं च

द्वितीयावृत्तिः ५०० } शिवचतुर्दशी वि० सं० २०३२ { निछावर प्रेम पूर्वक पाठ

भूमिका

आज से बत्तीस वर्ष पहले वि० सं० १९९९ में वैशाख शुक्ला पौर्णमासी के दिन श्रीवृन्दावन में राधारमणजी के मन्दिर में, श्रीराधारमणजी की चतु:शताब्दी जयन्ती का महोत्सव बड़े समारोह के साथ मनाया गया था। उसके अन्तर्गत एक कविसम्मेलन भी हुआ था, उसके सभापति पूज्यपाद गो० श्रीवनमालीलालजी महाराज थे। उस समय अभिनव व्याकरणाचार्य गो० श्रीरासविहारीजी शास्त्री के समीप में मैं व्या० शा० का प्रथम खण्ड दे रहा था। आपने मुझे कुछ समस्या पूर्ति के लिये दीं और कहा कि, तुम श्रीराधारमणजी के प्रागटच के विषय में कोई काव्य लिखो, जयन्ती के दिन सभा में सुना दिया जायगा। बस, उनकी कृपा का शंबल और बल श्रीराधारमणजी का प्राप्त हुआ, पश्चात् तत्काल उसी दिन "श्रीराधारमण-शतक" मेरे मुख से प्रगट हुआ। वै० शु० पौर्णमासी की रात्रि के ८ बजे से सभा का कार्य प्रारम्भ हुआ। क्रमश: सभी विद्वानों ने अपनी-अपनी समस्यायें सुनाईं, पश्चात् मेरी भी वारी आई। समस्या पूर्ति सुनाकर 'श्रीराधारमणशतक" सुनाया। श्रीवृन्दावन व मथुरा के प्रमुख-प्रमुख सभी विद्वान् सभा में उपस्थित थे। सभापति महोदय मुझ अत्यल्पवयस्क बालक की रचना पर विशेष प्रसन्न हुए और पुरस्कार देते हुए कहा कि— "श्रीराधारमणशतक" एकबार और सुनाओ। मैंने भी उनकी आज्ञानुसार सुनाया। उपस्थित सभी विज्ञजन और सभासद् सुनकर परम प्रसन्न हुए। उसी समय प्रसन्न होकर पूज्य गोस्वामीजी ने मुझे "घटिका-शतक" उपाधि से अलंकृत कर दिया। अब सुनिये—"श्रीराधारमणशतक" में वर्णित विषय का दिग्दर्शन यथा—आज से ४९१ वर्ष पहले स्वभजन-त्रिभजन-प्रयोजनाय पतित-जन-पावनाय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ही नवद्वीप में श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुजी के स्वरूप में अवतीर्ण हुए थे। २४ वर्ष गृहस्थाश्रम में बिताकर सन्यास ग्रहण किया। तदनन्तर श्रीहरिनाम का प्रचार करते हुये दक्षिण दिशा में आये। वहाँ पर कावेरी नदी के किनारे श्रीरङ्गनाथ नाम के नगर में, श्रीवेंकटभट्टजी से आपका सम्मेलन हुआ। वर्षा के आजाने के कारण श्रीमहाप्रभुजी ने वहीं चातुर्मास्य व्रत किया। श्रीभट्टजी ने अपने सुपुत्र श्रीगोपालभट्टजी को श्रीमहाप्रभुजी की सेवा में सदैव के लिये समर्पण कर दिया। श्रीमहाप्रभुजी ने शिक्षा दीक्षा देकर श्रीगोपालभट्टजी को श्रीवृन्दावन भेज दिया। वहाँपर रहकर श्रीभट्टजी ने

"श्रीहरिभक्तिविलास" प्रभृति ग्रन्थों की रचना की। एक समय आप भक्ति का प्रचार करते हुये श्रीगण्डकी नदी में स्नान करने गये। स्नान के अनन्तर सूर्य को अर्घ देते समय आपकी अंजलि में एक अत्यन्त सुन्दर शालग्राम की मूर्ति आ गयी, पश्चात् जल भरने के लिये कमण्डलु, ज्यों ही जल में डुबाया त्यों ही कमण्डलु में भी ११ शालग्राम आ गये। पश्चात् आप वृन्दावन पधारे, इन्हीं प्रथम प्राप्त शालग्राम मूर्ति से श्रीराधारमणजी का प्रागट्य हुआ है। जो इस शतक में विस्तारपूर्वक वर्णित है। वही दिव्यमूर्ति श्रीधाम वृन्दावन में, श्रीराधारमणजी के मन्दिर में आज भी विराजमान है। भाग्यशील जन प्रतिदिन दर्शन कर कृतार्थ होते हैं। वस, मैंने तो महापुरुषों से यथाश्रुतं यथाधीतं यथामति के अनुसार लिख दिया है। यदि कोई त्रुटि भी रह गई हो तो विज्ञजन सुधार लेंगे। बालक ने तो अपना पाठ सुना दिया।

इति निवेदयति—विनीतो—**वनमालिदासः**

●

ग्रन्थकर्तुः प्रशस्तिः

(लेखक—कुँवर हरिश्चन्द्रदेव वर्मा "चातक")

श्रीमदनवद्य श्रद्धेय शास्त्री जी सादरं स्नेहाञ्जलयः।

चि० गं० प्र० द्वारा आपका करकमलाङ्कित पत्र प्राप्तकर परमानन्द-सन्दोह हुआ। १—श्रीसख्य-सुधाकरः। २—श्रीभक्तनाममालिका पुस्तकद्वय प्राप्त हुईं। अनिर्वचनीयानन्द उपलब्ध हुआ। आप काव्यकला निष्णात हैं—पदे पदे आपकी प्रतिभा दृग्गोचर हो रही है।

'सख्यसुधाकर' के दर्शन कर शीतल हृदय हुआ मेरा
'भक्तनाममालिका' पहिन कर मिटा भेद मेरा तेरा।
श्रीवनमालिदास बन पहिले पुनः सखा का पद पाया
भव-से तप्त प्राणियों के हित 'सख्य-सुधाकर' प्रगटाया।।

अस्तु मैं तो, यत्र-तत्र पुस्तकों को देखकर खिल उठा। आपका अनुवाद इतना सुन्दर है कि, जी चाहता है आपकी लेखनी को, नहीं नहीं उन अँगुलियों को, नहीं नहीं उस हृदय को ही चूम लूँ आलिङ्गन में भर लूँ। धन्य हैं आप कृतविद्य वश्यवाक् कविरत्न।

★

※ श्रीराधारमणो जयति ※

श्रीराधारमणशतकम्

उपगीतिछन्दः प्रथमम्—

श्रीराधारमणाख्यं, शतकं वनमालिदासेन ।
क्रियते तद् वनमालिन् !, वनमालेवाऽऽत्मसात् क्रियताम् ॥१॥
देवभाषाऽनभिज्ञैस्तु दुर्ज्ञेयं शतकं त्विदम् ।
इति मत्वा मूलकर्त्रा भाषाटीकाऽपि लिख्यते ॥

हे श्रीमन् ! सखे ! वनमालिन् ! यह "श्रीराधारमणशतक"-नाम का जो शतक, आपके ही सखा "वनमालिदास" बना रहे हैं, इसे आप वनमाला की भाँति सहर्ष स्वीकार कर लीजिये ॥१॥

सख्यसंवलितज्ञानभक्तिदं स्वगुरुं स्तौति, आर्याछन्दसा—

यस्य कृपालव-शक्त्या, शक्तः शतकं त्वहं विनिर्मातुम् ।
स जयति गुरुदेवो मे, श्रीकृष्णानन्ददासाख्यः ॥२॥

अब सख्य-भाव युक्त ज्ञान एवं भक्ति के देनेवाले निज गुरुवर को स्तुति करते हैं कि—जिनकी कृपा के लेशमात्र से, सर्वथा असमर्थ भी मैं, शतक निर्माण करने को समर्थ हुआ हूँ, वे ही पूज्यपाद १०८ "स्वामि श्रीकृष्णानन्ददासजी"-नामक मेरे श्रीगुरुदेवजी की जय हो ॥२॥

स्वेष्टदेवसहितान् स्वसम्प्रदायाचार्यान् स्तौतिअनुष्टुब्वृत्तेन—

सखायौ रामकृष्णौ मे जयतः स्म निरन्तरम् ।
जयन्ति मध्वगौराङ्ग-नित्यानन्दा जगद्धिताः ॥३॥

अब अपने इष्टदेव सहित अपने सम्प्रदायाचार्यों की स्तुति करते हैं यथा—मेरे सनातन सखा श्रीरामकृष्ण की जय हो. और जगत् के हित के लिये ही जिनका पृथ्वीतल पर अवतार हुआ है वही मेरे पूज्य-चरण आचार्य-वर्य "श्रीमध्व" "श्रीगौराङ्ग महाप्रभु" "श्रीनित्यानन्द महाप्रभु जी" की सदा जय हो ॥३॥

वाणीविनायकौ स्तौति आर्यावृत्तेन सादरम्—

सा जयति श्री वाणी, भक्तिग्रन्थेषु मोदमाना या ।
स जयति गणाधिराजो, विघ्नान् हन्तुं समर्थो यः ॥४॥

अब आदर-पूर्वक श्रीवाणी विनायक की स्तुति करते हैं यथा—उन श्रीसरस्वतीजी की जब हो कि जो, भक्ति प्रतिपादक ग्रन्थों में ही सदा प्रसन्न रहती हैं। और उन श्रीगणेशजी महाराज की सदा जय हो कि—जो, विघ्नों को निवारण करने में परमसमर्थ हैं ॥४॥

विद्यागुरूनभिनन्दति अनुष्टुभा—

जयन्ति विद्यागुरवो येभ्यो विद्यां समध्यगाम् ।
यद्दत्त-विद्याविभवै-र्ग्रन्थान् प्राचीकटं बहून् ॥५॥

अब विद्यागुरुओं का अभिनन्दन करते हैं यथा—मेरे पूज्यपाद उन सब विद्यागुरुओं की जय हो कि, निज के द्वारा दी हुई विद्या के वैभव से मैंने बहुत से ग्रन्थ प्रगट किये हैं ॥५॥

शार्दूलविक्रीडितद्वयेन श्रीगोपालभट्टगोस्वामिनं तदिष्टदेवं श्रीराधारमणं च स्तौति—

येषां चित्तसरोवरे प्रकटितं त्वासीत् पदाब्जं हरे-
नैवेद्यं च निवेदयन्ति विविधं नानानुरागं स्म ये ।
श्रीवृन्दावनजं निपीय रसकं जाताः स्वयं ये रसा
गृह्णन्ति स्म गुणाँस्त्यजन्त्यगुणकान् ये भक्तभूपा मताः ॥६॥

शीलौदार्य-कृपा-क्षमादिनिलया धर्मस्य ये सेतव
आसँस्ताँस्तु मुहुर्नतोऽस्मि शिरसा गोपालभट्टानहम् ।
श्रीराधारामणं तथैव शिरसा नत्वा ततो वर्णये
शालग्रामतनोर्यथा प्रकटितं रूपं हरेः सुन्दरम् ॥७॥

अब दो श्लोकों से पूज्यचरण १०८ श्रीगोपालभट्ट गोस्वामीजी महाराज की तथा उनके इष्टदेव श्रीराधारमणजी की स्तुति करते हैं यथा—मैं, पूज्यपाद उन श्रीगोपालभट्ट गोस्वामीजी महाराज को बारम्बार साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम करता हूँ, जिनके कि, चित्तरूपी-सरोवर में श्रीहरि के चरणकमल सदा ही खिले रहते थे, और जो अनेक प्रकार के नैवेद्य को अनुराग पूर्वक श्रीहरि के समर्पण करते थे, एवं जो वृन्दावन से जायमान दिव्यरस का पान कर स्वयं रसस्वरूप हो गये थे, और जो प्राणीमात्र में गुणों का ही ग्रहण करते थे, अवगुणों को त्याग देते थे और जो भक्त भूप थे, और जो शील, उदारता, कृपा, क्षमा, आदि के स्थान एवं धर्म के सेतु थे। उसी प्रकार श्रीराधारमणलालजी को भी प्रणाम करके अब उस विषय का वर्णन करता हूँ कि, जिस प्रकार "शालग्राम" जी से अत्यन्त सुन्दर श्रीराधारमणजी का प्रागट्य हुआ था ॥६-७॥

विदुषः प्रणमति वसन्ततिलकावृत्तेन—

विद्वज्जनास्तु मम मूर्खवरस्य दोषान्, बालोऽयमित्यविगणय्य पुनः प्रसन्नाः ।
भक्तिं हरेश्चरणपंकजयुग्ममध्ये, दास्यन्ति नूनमिति तान्शिरसा नतोऽस्मि ।।८

विद्वज्जन तो "यह बालक है" ऐसा समझ कर, मुझ मूर्ख श्रेष्ठ के दोषों को ध्यान में न लाकर, अपितु प्रसन्न होकर श्रीहरि के पादारविन्द द्वन्द्व में भक्ति ही प्रदान करेंगे। अतः नत मस्तक हो मैं, उनको भी प्रणाम करता हूँ ।।८।।

उपोद्घातमाह-तत्र पूर्वमुपेन्द्रवज्रा वंशस्थद्वयं ततः कतिपयानि अनुष्टुब्वृत्तानि ज्ञेयानि-

अहैतुकी जीवसमूहकेषु, कृपा हरेर्वर्तत एव नित्यम् ।
जना हरिं बुद्धिपथात् कथंचि-,न्निवारयन्तां न हरिर्हि तांस्तु ।।९।।

अब प्रकृत वस्तु की सिद्धि के लिये कुछ उपोद्घात वर्णन करते हैं यथा—करुणावरुणालय श्रीहरि की तो जीव समूहोंपर सदैव से अहैतुकी कृपा विद्यमान है, जीव चाहे अपने बुद्धि पथ से श्रीहरि को हटा दें, परन्तु श्रीहरि तो उनको कभी भी नहीं हटाते हैं ।।९।।

शरीरिणो यान्ति यदा हरिं मुधा, त्वधिक्षिपन्तो हि पराङ्मुखाग्रताम् ।
हरिस्तदैवोद्धरणाय संसृते-,र्युगे युगे स्वां तनुमाप्रकाशते ।।१०।।

जीव जब श्रीहरि की निन्दा करते करते विमुखता की पराकाष्ठापर पहुँच जाते हैं, कृपालु हरि तभी उनका संसार से उद्धार करने के लिये युग-युग में अवतार धारण करते रहते हैं ।।१०।।

केनाऽपि कर्हिचिज्जीवान् रूपेण नयते हरिः ।
सविधे च वितीर्य स्वां प्रेमभक्तिमलौकिकीम् ।।११।।

और श्रीहरि, कभी किसी रूप से अपनी अलौकिक प्रेम भक्ति का दान कर जीवों को अपने पास बुला लेते हैं ।।११।।

भक्तेश्चैव प्रचारार्थं गुर्वाचार्यमहात्मनाम् ।
अवतीर्य स्वरूपेण कदाचित्कुरुते दयाम् ।।१२।।

और कभी भक्ति के प्रचार के लिये श्रीगुरु, आचार्य एवं महापुरुषों के रूप से अवतीर्ण होकर जीवोंपर दया दृष्टि करते हैं ।।१२।।

तथ्येन चोपदेशेन सर्वदोपकरोति वै ।
दयालुः सततं विष्णुराचर्य च तथाऽऽत्मना ।।१३।।

और सर्वदा दयालु प्रभु स्वयं आचरण करके सत्य उपदेश से जीवों का सदा उपकार ही करते रहते हैं ।।१३।।

एवं निरन्तरं जीवान् धर्ममार्गच्युतान्मुहुः ।
दर्शयन् सत्यमध्वानं हरिरुद्धरत्युत्पथात् ।।१४।।

इस प्रकार निरन्तर धर्ममार्ग से च्युत हुए जीवों को बारम्बार सच्चा रास्ता दिखाते हुये बुरे मार्ग से रक्षा करते रहते हैं ।।१४।।

एवं यदा कलेर्दोषाज्जीवा उत्पथगामिनः ।
अधर्मं धर्मं मन्वाना जाताः सद्भावनाशकाः ।।१५।।
स्वप्रतिज्ञानुसारेण हरिणा बन्धुरूपिणा ।
तदाऽवतीर्य श्रीकृष्ण-चैतन्यप्रभुरूपके ।।१६।।
उच्चावचजनेभ्योऽपि दानं नाम्नो हरेः कृतम् ।
एवं चैतन्यदेवोऽपि जीवानुद्धार्य संसृतेः ।।१७।।
अन्तर्धानं गतः किन्तु भक्तेच्छापूर्तिहेतवे ।
पुनः प्रकटितं रूपं शश्वद् भक्तजनप्रियम् ।।१८।।

और इसी प्रकार कलि के दोषों से जीव जब उत्पथगामी होगये और अधर्म में धर्म को मानते हुये सद्भाव के नाशक हो गये, तब अपनी गीतोक्त प्रतिज्ञानुसार प्राणीमात्र के बन्धुस्वरूप श्रीहरि ने "नवद्वीप में" श्रीकृष्ण-चैतन्य महाप्रभु के रूप में अवतार लेकर उच्च नीच सभी श्रेणी के जीवों को अपनी अहैतुकी कृपा से श्रीहरि नाम का वितरण किया । इस प्रकार श्रीचैतन्य देव भी जीवों का संसार सागर से उद्धार करके अन्तर्धान होगये । परन्तु भक्तों की इच्छा पूर्ति के लिये निरन्तर भक्तजन मनोहर रूप को श्रीहरि ने पुनः प्रगट कर दिखाया ।।१५-१८।।

एवं मुहुर्मुहू रूपं प्रकटय्य दयालुना ।
हरिणा कार्यते प्रेम-रसास्वादो जनाय वै ।।१९।।

इसी प्रकार दयालु श्रीहरि, अपने मनोहर श्रीविग्रह को बारम्बार प्रगट कर अपने भक्तों को प्रेमलक्षणा भक्ति के रस को चखाते रहते हैं ।।१९

यद्-भक्तप्रेमरशना-बद्धैः प्रकटितं यथा ।
मधुरं हरिभी रूपं तदिदानीं निवर्ण्यते ।।२०।।

श्रीहरि ने जिन भक्तवर्य की प्रेम रूपी डोरी में बँधकर, परम मधुर रूप को जिस प्रकार प्रगट किया था उसको अब वर्णन करते हैं ।।२०।।

कथांशः प्रारभ्यते—

वैक्रमीये मिते वर्षे द्व्यब्धिभूतसुधांशुभिः ।
श्रीनवद्वीपके चैव कलिपावन-हेतवे ।।२१।।

कृष्णचैतन्यरूपेण हरिराविर्बभूव ह।
चतुर्विंशतिवर्षाणि गृहस्थाश्रममध्यके ॥२२॥
यापयित्वा तु जग्राह ततः संन्यासकं किल।
प्रचारयन् स्वकं नाम ततो दक्षिणमागतः ॥२३॥

विक्रम सम्वत् १५४२ में फाल्गुन की पूर्णिमा के दिन सायंकाल में श्रीहरि कलियुग को पवित्र करने के लिये श्रीनवद्वीप धाम में पं० श्रीजगन्नाथ मिश्र जी के घर, श्रीमती पूजनीया माता शचीदेवी के द्वारा, श्रीकृष्णचैतन्य-रूप से प्रगट हुए थे। २४ वर्ष गृहस्थाश्रम में बिताकर, पूज्यपाद श्रीकेशव-भारतीजी से सन्यास ग्रहण कर लिया। और अपने श्रीहरिनाम का प्रचार करते हुए दक्षिण दिशा में पधारे ॥२१-२३॥

इतः शार्दूलविक्रीडितत्रयम्—

कावेरीतटवर्त्तिपत्तनवरे श्रीरङ्गनाथाख्यके
श्रीचैतन्यप्रभोर्यदा सुगमनं तर्ह्येव वर्षाऽऽगता।
श्रीरङ्गेऽपि च मेलनं समजनि श्रीवेङ्कटाख्यैर्बुधै-
र्भट्टोपाह्वयुतैः पुनश्च प्रभुणा तत्रैव वासःकृतः ॥२४॥

श्रीकावेरी नदी के किनारेपर वर्तमान 'श्रीरङ्गनाथ' नामक नगर में, श्रीचैतन्य महाप्रभुजी जब पधारे उसी समय इनकी सेवा के लिये ही मानो अगवानी वर्षा ऋतु भी उपस्थित होगई। श्रीरङ्गक्षेत्र में भी, 'श्रीवेङ्कटभट्ट' नामक विज्ञवर्य से, श्रीप्रभुजी का सम्मेलन हुआ और भट्टजी के आग्रह से वहीं चातुर्मास्य व्रत करना आरम्भ कर दिया ॥२४॥

आसीद् भट्टमहोदयस्य च शिशुर्गोपालभट्टाख्यको
यः सेवाकरणे प्रभोः पटुतमः सेवानिमग्नोऽभवत्।
कस्मिंश्चित्तु दिने प्रसंगवशतो वाक्यं प्रभोः श्रीमुखाद्
भट्टं बोधयितुं द्रुतं विनिसृतं पुत्रो न ते लौकिकः ॥२५॥
श्रीराधावरकुञ्जगा हि गुणमञ्जर्येव तेऽयं शिशु-
रुद्धारो भविता शिशोस्तव बलाज्जीवावलेः संसृतेः।
यत्नेनाऽयमतो विचार्य मनसा संरक्षितव्यस्त्वया
श्रुत्वैवंविधमात्मजं प्रमदकं भट्टस्तु लेभे मुहुः ॥२६॥

श्रीवेङ्कटभट्टजी के 'श्रीगोपालभट्ट'-नामक सुपुत्र जो थे वे सेवा करने में अत्यन्त चतुर थे, अतः श्रीमहाप्रभुजी की सेवा में निमग्न हो गये। प्रदनन्तर प्रसङ्गवशात् किसी दिन, प्रभुजी के श्रीमुख से भट्टजी को समझाने के उद्देश्य से यह वाक्य सहसा निकल पड़ा कि—हे भट्टजी ! आपका यह

पुत्र, लौकिक नहीं है, अपितु श्रीराधारमणजी की निकुञ्जगामिनी "श्रीगुण-मंजरी" सखी का ही अवतार है, और तुम्हारे पुत्र के द्वारा बहुत से जीवों का संसार सागर से उद्धार होगा। अतः मन से विचार कर यत्नपूर्वक आपको इसकी रक्षा करनी चाहिये। इस प्रकार के वचनों को सुनकर भट्टजी को महान् आनन्द प्राप्त हुआ ॥२५-२६॥

वेङ्कटाख्यास्ततो भट्टा अर्पयन्तो मुदा शिशुम्।
ऊचुरेवंविधं वाक्यं नेतव्योऽयं शिशुः प्रभो! ॥२७॥

तदनन्तर श्रीवेङ्कटभट्टजी, अपने सुपुत्र को श्रीप्रभुजी के समर्पण करते हुए यों बोले कि—हे प्रभो! इस बालक को आप सदैव के लिये अपनी सेवा में ही ले लीजिये ॥२७॥

वैक्रमीये मिते वर्षे त्वष्टषड्भूतभूमिभिः।
मासे तु कार्तिके चैव शुक्ले पक्षे तथैव च ॥२८॥
एकादश्यां तु गोपालभट्टः श्रीप्रभुणा कृतः।
दीक्षितो मन्त्रराजेन गोपालाख्येन चैव हि ॥२९॥

तदनन्तर वि० सं० १५६८ में कार्तिक मास के शुक्लपक्ष में एकादशी के दिन श्रीमहाप्रभुजी ने श्रीगोपालभट्टजी को मन्त्रराज 'श्रीगोपाल'-नामक मन्त्र से दीक्षित कर दिया ॥२८-२९॥

ततस्तु बोधयन् गुप्तं रहस्यं प्रभुरुक्तवान्।
वत्स! गोपाल! गन्तव्यं त्वया वृन्दावने शुभे ॥३०॥

तदनन्तर गुप्त रहस्य को समझाते हुए श्रीप्रभुजी ने कहा कि—हे वत्स! गोपाल! तुम मेरी आज्ञा से मङ्गलमय श्रीधाम वृन्दावन चले जाओ ॥३०॥

तत्राऽन्तरङ्गभक्ता मे बहवो निवसन्ति हि।
श्री सनातनरूपाद्याः सङ्गमस्तैर्भविष्तति ॥३१॥

वहाँपर श्रीसनातन एवं श्रीरूपादिक मेरे बहुत से अन्तरङ्ग भक्त रहते हैं उनसे तुम्हारा समागम होगा ॥३१॥

साकं तैर्भक्तितत्त्वस्य प्रचारः क्रियतां त्वया।
तथा श्रीकृष्णचन्द्रस्य लीलाभूमेः प्रकाशनम् ॥३२॥

वहाँ जाकर तुम उन सबके साथ भक्तितत्त्व का प्रचार करना और श्रीकृष्णचन्द्र की लीलाभूमि को भी प्रकाशित करना ॥३२॥

ततश्चैतन्यदेवोऽपि विरहाकुलितान् हि तान्।
परित्यज्य तथा मार्गे बहूञ्जीवान् समुद्धरन् ॥३३॥

हरिनामोपदेशं च कुर्वन्नीलाचलं ययौ ।
इतो गोपालभट्टाश्च बभूवुर्विरहाकुलाः ।।३४।।

इस प्रकार का उपदेश कर तदनन्तर श्रीचैतन्य महाप्रभुजी भी, अपने विरह से व्याकुल श्रीगोपालभट्टजी को छोड़कर तथा मार्ग में बहुत से विमुख जीवों का उद्धार करते हुए और श्रीहरिनाम का उपदेश करते हुए नीलाचल अर्थात् श्रीजगन्नाथजी पधारे । इधर श्रीगोपालभट्टजी भी श्रीप्रभुजी के विरह से व्याकुल होगये ।।३३-३४।।

पुनश्चाज्ञामनुस्मृत्य प्रभो-र्वृन्दावनं प्रति ।
यातुं तु दधिरे चेतो यायामुर्वा ततः कथम् ।।३५।।
पित्रोः स्थविरयोराज्ञां विना यानं सुदुष्करम् ।
अतो गोपालभट्टानां चित्ते चिन्ता बलीयसी ।।३६।।

तदनन्तर श्रीप्रभुजी की आज्ञा का अनुस्मरण करते हुए श्रीवृन्दावन जाने को, श्रीभट्टजी मन तो करते थे, परन्तु सहसा वहाँ से जायँ कैसे ? कारण कि, वृद्ध माता पिता की आज्ञा बिना तो जाना अत्यन्त कठिन था, अतः श्रीगोपालभट्टजी के चित्त में महती चिन्ता रहती थी ।।३५-३६।।

वैक्रमीये मिते वर्षे सिद्धचष्टभूतभूमिभिः ।
यातुं वृन्दावनं पित्रोराज्ञा जाता सुखप्रदा ।।३७।।
तत्क्षणं पञ्जरान्मुक्तो यथोड्डीय शुको व्रजेत् ।
तथा गोपालभट्टाश्च श्रीमद्-वृन्दावनं ययुः ।।३८।।

तदनन्तर वि० सं० १५८८ में श्रीवृन्दावन जाने के लिये माता पिता की सुखप्रद आज्ञा सहर्ष होगई । आज्ञा पाते ही श्रीगोपालभट्टजी, तत्क्षण इस प्रकार सहर्ष वृन्दावन चल दिये जैसे कि, पिंजरे के बन्धन से मुक्त होकर तोता उड़ कर चला जाता है ।।३७-३८।।

यत्र श्रीकृष्णचैतन्यप्रभोराज्ञानुगामिनौ ।
भक्तौ श्रीकृष्णरक्तौ चोषतू रूपसनातनौ ।।३९।।
ताभ्यां गोपालभट्टानां सङ्गमः प्रागभूत् किल ।
ततो गोपालभट्टैश्च रचितोऽप्यति-सुन्दरः ।।४०।।
भक्तेस्तत्त्वप्रबोधाय रुजामिव निदानवत् ।
हरिभक्तिविलासाख्यो ग्रन्थो भक्त-मनोरमः ।।४१।।

जिस वृन्दावन में, श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु की आज्ञानुसार चलनेवाले, एवं श्रीकृष्ण में परमानुराग रखनेवाले, भक्तवर्य श्रीरूप सनातनजी दोनों भाई रहते थे । श्रीगोपालभट्टजी का सर्वप्रथम इन्हीं महापुरुषों से समागम

हुआ। तदनन्तर श्रीगोपालभट्टजी ने भक्ति के सम्पूर्ण रहस्यमय तत्त्व को जानने के लिये "श्रीहरिभक्ति-विलास"-नामक अत्यन्त सुन्दर भक्तजन मनोरम ग्रन्थ बनाया। रोगों के वास्तविक स्वरूप को जानने के लिये जैसे "माधव निदान" है तद्वत् ॥३९-४१॥

ततः कतिपयाहःसु यातेषु प्रेषितस्तु तैः।
वृन्दावनेऽहमायात इत्युदन्तः स्वकः प्रभोः ॥४२॥
समीपं वैष्णव-द्वारा शुभे नीलाचले पुरे।
वैष्णवेन ततो गत्वा वाचिकं श्रावितं द्रुतम् ॥४३॥

तदनन्तर कुछ दिन व्यतीत होजाने पर श्रीभट्टजी ने, श्रीमहाप्रभुजी के पास, श्रीजगन्नाथजी में, एक वैष्णव द्वारा अपना यह वृत्तान्त कहला भेजा कि—प्रभो ! मैं श्रीवृन्दावन में आगया हूँ। वृत्तान्तवाहक उस वैष्णव ने जाकर शीघ्र ही यह वृत्तान्त सुना दिया ॥४२-४३॥

श्रुत्वा स्वशिष्यवृत्तान्तं तुष्टः प्रभुरभूद् बहु।
ततश्च प्रभुणाप्येकं लिखित्वा पत्रकं द्रुतम् ॥४४॥
प्रेषितं च तथा सार्धं दामकौपीनपट्टकाः।
गोपालभट्टसविधे प्रेषिताः प्रेमसूचकाः ॥४५॥

अपने शिष्य के वृत्तान्त को सुनकर श्रीप्रभुजी अत्यन्त प्रसन्न हो गये। तदनन्तर श्रीप्रभुजी ने भी, एक पत्र लिखकर श्रीगोपालभट्टजी के पास भेज दिया। तथा स्वप्रेमसूचक दाम, कौपीन और एक पट्ठा भी साथ ही भेज दिया ॥४४-४५॥

ततो गोपालभट्टाश्च दामकौपीनपट्टकान्।
लब्ध्वा प्रमुदिता भूत्वा त्वगाहन्त रसाम्बुधौ ॥४६॥

श्रीगोपालभट्टजी भी श्रीमहाप्रभुजी के कृपा स्वरूप दाम, कौपीन और पट्टे को प्राप्तकर प्रसन्न होकर रस समुद्र में गोता लगाने लगे ॥४६॥

ततो गोपालभट्टैश्च विचारितमिदं मुहुः।
कथमेतानि वस्तूनि प्रभुणा प्रेषितानि मे ॥४७॥
कुतः पिताऽथवा श्रीमद्गुरवो ददति स्वयम्।
एतादृशं वस्तुजातमायाँति तु विचार्य वै ॥४८॥
गुरवः किमिदानीं मे लोकादस्मात् स्वलीलिकाम्।
कर्तुं तिरोहितां नूनमिच्छन्तीति मतिर्मम ॥४९॥

तदनन्तर श्रीभट्टजी ने बारम्बार यह विचार किया कि श्रीमहाप्रभुजी ने ये वस्तुएं मेरे लिये क्यों भेजी हैं ? कारण कि, पिता अथवा श्रीगुरुजी

आगे का विचार कर ही स्वयं अपने पुत्र या शिष्य को ऐसी वस्तुएँ स्वयं देते हैं, तो क्या मेरे प्राणप्रिय श्रीगुरुदेवजी अपनी लीला को इस लोक से अन्तर्हित करना चाहते हैं ? मेरा तो यही निश्चित विचार है ।।४७-४९।।

यदैवैवं विचारोऽभूच्चित्ते तेषां महात्मनाम् ।
तदैवाऽश्रुप्रवाहोऽभूदभूवन् व्याकुलास्तथा ।।५०।।

श्रीसनातनरूपाभ्यां तस्मिन्नेव दिने किल ।
दृष्टं स्वप्ने यदाधाय तेजो गोपालभट्टके ।।५१।।

स्वकं चैतन्यदेवोऽपि तत्रैवान्तरधीयत ।
दृष्ट्वैवं व्याकुलौ भूत्वा स्वप्नं तौ लघु जागृतौ ।।५२।।

ततश्च वैष्णवैः साकं भट्टपार्श्वमुपागतौ ।
निवेद्य स्वप्नजां वार्तां ततः सर्वेऽपि चुक्रुशुः ।।५३।।

महापुरुष उन श्रीगोपालभट्टजी के चित्त में जब ऐसा विचार हुआ तभी नेत्रों से अश्रुओं का प्रवाह होने लग गया तथा स्वयं अत्यन्त व्याकुल हो उठे । उसी दिन श्रीसनातन गोस्वामी और श्रीरूप गोस्वामीजी ने स्वप्न में यह देखा कि—श्रीचैतन्य महाप्रभुजी, अपने दिव्य तेज को, श्रीगोपाल-भट्टजी में स्थापित कर, अन्तर्हित हो गये । ऐसा स्वप्न देखते ही दोनों भाई व्याकुल होकर जाग उठे । पश्चाद् कुछ वैष्णवों को साथ लेकर श्रीभट्टजी के समीप पधारे और स्वप्न का वृत्तान्त निवेदन कर, सबके सब रुदन करने लग गये ।।५०-५३।।

ततो वृन्दावनं शीघ्रमायातं वाचिकं प्रभोः ।
भक्तेष्विरम्मद इव रूपेणाऽलौकिकेन हि ।।५४।।

ततो वियोगजो वह्निर्भक्तवृन्देष्ववर्धत ।
श्रीमद्गोपालभट्टानां दशां को वर्णयेन्ननु ।।५५।।

गौरचन्द्रोऽभवद् येषां प्राणेभ्योऽप्यधिकः प्रियः ।
ततस्तु मूर्च्छिता भूत्वा निपेतुर्धरणीतले ।।५६।।

मूर्च्छितायामवस्थायां गौरचन्द्रो बभूव ह ।
भक्तदुःखेन दुःखाढ्यो प्रादुर्गौरिव वत्सला ।।५७।।

तदनन्तर स्वप्न में जो देखा था, वही श्रीप्रभु का सन्देश बिजली के समान अलौकिक रूप से श्रीवृन्दावन में सब भक्तों में संचारित हो गया । और भक्तवृन्दों में तत्क्षण वियोगरूपी अग्नि बढ़ गई । श्रीगोपालभट्टजी की दशा का कोई कैसे वर्णन करे । जिनके कि—श्रीगौरचन्द्र प्राणों से भी

अधिक प्यारे थे, श्रीभट्टजी मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े, उस मूर्छित अवस्था में ही, भक्तों के दुःखों से दुखित श्रीप्रभु, वात्सल्यमयी गैया के समान प्रगट हो गये ॥५४-५७॥

उक्तं च प्रभुणा तत्र वत्स ! गोपाल ! मा खिद ।
प्रियेभ्योऽहं तु भक्तेभ्यो नास्मि दूरं कदाचन ॥५८॥

गण्डकीमापगां गच्छ द्रुतं हे पुत्र ! लप्स्यते ।
तत्र द्वादशरुपेण शालग्रामस्य मूर्तिका ॥५९॥

सर्वतः प्रथमं तत्र मूर्तिर्दामोदरस्य या ।
लभ्येत तत्र जानीहि मामव्यक्तमवस्थितम् ॥६०॥

और श्रीप्रभुजी ने कहा कि, हे वत्स ! गोपाल ! तुम इतने दुखित मत होओ क्योंकि, मैं, अपने प्रिय भक्तों से कभी भी दूर नहीं हूँ, सदा पास ही रहता हूँ; हे पुत्र ! अब तुम मेरी आज्ञानुसार शीघ्र ही "गण्डकी" नदी को चले जाओ, वहाँ पर तुम्हें १२ शालग्राम की मूर्तियाँ मिलेंगी, उनमें से सर्वप्रथम जो "दामोदर" की मूर्ति प्राप्त हो, उसमें ही तुम, मुझको अव्यक्त रूप से सदा विराजमान ही जानना ॥५८-६०॥

पट्ट एको मया पूर्वं समीपे प्रेषितस्तव ।
उपविश्य त्वया तत्र भक्तेः कार्या प्रचारता ॥६१॥
त्वत्तः पश्चाद्भविष्यन्ति शिष्यका बान्धवास्तथा ।
पट्टाधिकारिणस्तेऽपि वत्स ! धर्मप्रचारकाः ॥६२॥
एवमुक्त्वा प्रभुः पश्चाद् भट्टमालिङ्ग्य वक्षसा ।
तथा च मूर्ध्न्युपाघ्राय तत्रैवान्तरधीयत ॥६३॥

और मैंने तुम्हारे पास पहले एक पट्टा भी भेजा था, तुम्हें मिला होगा, उसी पर बैठकर तुम, भक्ति का प्रचार किया करना। और तुम्हारे पीछे भी जो तुम्हारे शिष्य या बान्धव होंगे; हे वत्स ! वे भी भक्ति धर्म प्रचारक इस पट्टा के अधिकारी होंगे। इसप्रकार कहकर पश्चात् श्रीभट्टजी को वक्षस्थल से आलिगन कर एवं मस्तक में सूँघकर श्रीमहाप्रभुजी वहीं अन्तर्धान हो गये ॥६१-६३॥

श्रीसनातनरूपाद्या भक्ताश्चान्येपि तादृशम् ।
प्रभुं प्रेमपरं दृष्ट्वा विसंज्ञा मुमुहु-र्मुहुः ॥६४॥

संज्ञां लब्ध्वा ततो भट्टैर्मनसीदं विचारितम् ।
पूजनीये प्रभोः पट्टे कथं चोपविशाम्यहम् ॥६५॥

श्रीसनातनरूपाद्या बोधयामासुराशु तान् ।
गुरूणां भट्ट ! नैवाज्ञा लङ्घनीया कदाचन ।।६६।।

श्रीसनातन एवं श्रीरूप गोस्वामी प्रभृति अन्य भक्त भी प्रभु को इस प्रकार प्रेम परायण देखकर संज्ञा रहित होकर बारम्बार विमुग्ध हो गये। तदनन्तर मूर्छा को त्यागकर श्रीभट्टजी ने मन में यों विचारा कि, और सब आदेश तो ठीक है परन्तु पूजनीय प्रभुजी के पट्टे पर मैं कैसे बैठ जाऊँ। आपने अपने इस विचार को जब प्रगट किया तो श्रीसनातन रूपादि महा-पुरुषों ने उनको तत्क्षण समझाया कि,—हे श्रीभट्टजी गुरुओं की आज्ञा का कभी उल्लंघन नहीं करना चाहिये ।।६४-६६।।

ततो गोपालभट्टाँस्ते प्रभुदत्ते सुपट्टके ।
विधिवत्कारयामासुरभिषिक्तांस्ततः परम् ।।६७।।
हर्षिता भूषयामासुः श्रीगोस्वामीत्युपधिना ।
ततः प्रभृति तद्वंशे महासम्मानसूचकम् ।।६८।।
गोस्वामीति पदं सर्वैरुच्यते नामधेयके ।
ततो गोपालभट्टाश्च प्रभोराज्ञानुसारतः ।।६९।।
प्रस्थिता गण्डकीं शीघ्रं समानेतुं प्रभुं ततः ।
भक्तिं प्रचारयद्भिस्तैः प्राप्ता पुण्यजला नदी ।।७०।।
प्रथमे दिवसे तत्र चोपवासः कृतस्तु तैः ।
ततोऽन्यदिवसे स्नात्वा प्रभोरन्वेषणं कृतम् ।।७१।।

तदनन्तर उन महात्माओं ने श्रीप्रभुजी के दिये हुए पट्टे पर श्रीगोपालभट्टजी को विधि पूर्वक अभिषिक्त कर दिया—तथा "श्रीगोस्वामी" इस उपाधि से विभूषित कर दिया। बस, उसी दिन से उनके वंश में महा सम्मान सूचक "गोस्वामी" यह पद सबके नाम के पीछे सब लोग उच्चारण करते हैं। तदनन्तर श्रीभट्टजी श्रीप्रभुजी की आज्ञा के अनुसार अपने प्रभु को लेने के लिये शीघ्र ही गण्डकी नदी को चल दिये, तथा मार्ग में भक्ति का प्रचार करते हुए गण्डकी नदी पर पहुँच गये। वहाँ पर उस पुण्यजलमयी नदी के किनारे प्रथम दिन तो आपने उपवास किया—दूसरे दिन स्नान कर अपने प्रभु का अन्वेषण किया ।।६७-७१।।

कृतेऽप्यन्वेषणे यर्हि प्राप्ता नो हृदयेश्वराः ।
प्रार्थना कर्तुमारब्धा तदा तत्प्राप्तिहेतवे ।।७२।।

अन्वेषण करने पर भी जब हृदयेश्वर प्रभु प्राप्त न हुए तब उनकी प्राप्ति के लिये प्रार्थना प्रारम्भ कर दी ।।७२।।

भाण्डीरेश ! शिखण्डमण्डनवर ! श्रीखण्डलिप्ताङ्ग हे
वृन्दारण्यपुरन्दर ! स्फुटदमन्देन्दीवरश्यामल ! ।
कालिन्दीप्रिय ! नन्दनन्दन ! परानन्दारविन्देक्षण !
श्रीगोविन्द ! मुकुन्द ! सुन्दरतनो ! मां दीनमानन्दय ।।७३।।

हे भाण्डीर वट के स्वामिन् ! हे सुन्दर मयूर-मुकुट-धारिन् ! हे चन्दन-चर्चित-कलेवर ! हे वृन्दावन-पुरन्दर ! हे खिले हुए दिव्य नील-कमल के समान श्यामसुन्दर ! हे कालिन्दी प्रिय ! हे नन्दनन्दन ! हे परमानन्द ! हे कमलनयन ! हे श्रीगोविन्द ! हे मुकुन्द ! हे सुन्दर तनो ! आपके विरह से व्याकुल मुझ दीन को आनन्दित कर दीजिये ।।७३।।

इत्येवं प्रार्थनां कृत्वा यदार्घं दातुमुद्यताः ।
तदाऽञ्जलौ सतायातः शालग्रामोऽतिसुन्दरः ।।७४।।

इस प्रकार प्रार्थना करके जब सूर्यदेव को अर्घ देने को उद्यत हुये तभी आपकी अञ्जलि में एक सुन्दर शालिग्रामजी आ गये ।।७४।।

लब्ध्वाऽगाहन्त ते तर्हि दुष्पारे हर्षसागरे ।
ततोऽश्रूणां प्रवाहोऽभूद् गौरकृष्णेति तन्मुखे ।।७५।।

प्राप्त करते ही वे दुष्पार हर्ष सागर में गोते लगाने लग गये । नेत्रों से प्रेमाश्रुओं की झरी लग गयी, तथा उनके श्रीमुख में 'हा गौर कृष्ण !' यही शब्द विराजमान था ।।७५।।

ततः स्तुत्वा यदा तैस्तु जलमध्ये कमण्डलुः ।
पूरणार्थं कृतस्तर्हि स्वयमेव कमण्डलौ ।।७६।।
शालग्रामाः समाजग्मू रुद्रसंख्या मनोहराः ।
ततो वृन्दावनं जग्मुः पूरयित्वा मनोरथम् ।।७७।।
एको मासो व्यतीयाय मार्गे तेषां महात्मनाम् ।
ततो वृन्दावनं प्राप्य बभूबुर्मुदिता भृशम् ।।७८।।
प्राप्य गोपालभट्टाँश्च मुदितं भक्तमण्डलम् ।
प्रशशंस ह तद्भाग्यं बारम्बारं मुदा युतम् ।।७९।।
विद्वांसौ भक्तवर्यौ च श्रीमद्रूप-सनातनौ ।
अप्यालिङ्ग्य प्रेमपूर्वं तेषां मानं प्रचक्रतुः ।।८०।।

स्तुति करने के पश्चात् जल भरने के लिये ज्योंहीं कमण्डलु जल में डुबाया त्यों ही अत्यन्त मनोहर ११ शालग्राम स्वयं ही कमण्डलु में आगये । पश्चात् अपना मनोरथ पूरण कर श्रीवृन्दावन चले आये । आपको मार्ग में एक मास व्यतीत हो गया । वृन्दावन को प्राप्त कर आप विशेष प्रसन्न

हो गये । श्रीगोपाल भट्टजी को प्राप्त कर, भक्त-मण्डल भी मुदित होगया । और प्रसन्नता से युक्त होकर उनके भाग्य की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लग गया । तथा भक्ति के रहस्यमय तत्त्व वेत्ताओं के अग्रगण्य भक्तवर्य श्रीरूप सनातनजी महाराज ने प्रेमपूर्वक आलिङ्गन करके आपका सम्मान किया ।।७६-८०।।

श्रीसनातनगोस्वामी श्रीमन्मदनमोहनम् ।
गोविन्दं रूपगोस्वामी सेवतेष्म निरन्तरम् ।।८१।।

उस समय श्रीमदनमोहनजी के श्रीविग्रह की सेवा तो श्रीसनातन गोस्वामी एवं श्रीगोविन्ददेवजी की सेवा, श्रीरूप गोस्वामीजी निरन्तर किया करते थे ।।८१।।

गोपीनाथं मधुबुधः पूजयामास सादरम् ।
गोपालभट्टगोस्वामी ददर्श मुदितोऽन्वहम् ।।८२।।

और पं० मधु गोस्वामीजी श्रीगोपीनाथजी की पूजा आदर पूर्वक किया करते थे । और गो० श्रीगोपालभट्टजी प्रतिदिन आनन्दित हो सबका दर्शन किया करते थे ।।८२।।

श्रीगोविन्दमुखं गोपी-नाथवक्षःस्थलं तथा ।
श्रीमन्मदनमोहन-पादावतिमनोरमौ ।।८३।।

कदाचिद् भट्टवर्योऽपि पूजयामास तत्त्रिकम् ।
पूजाकाले प्रभून् दृष्ट्वा प्रार्थयामास मानसे ।।८४।।

अहैतुकी सा करुणा किंकरे मयि माधव ! ।
भविष्यति कदा स्वामिन् ! यया ते विग्रहत्रयम् ।।८५।।

एकस्मिन्नेव पश्येयं विग्रहे त्वैक्यमागतम् ।
पूजयेयं कृतार्थस्ते प्रतिमां च मनोरमाम् ।।८६।।

श्रीगोविन्ददेवजी का मुखारविन्द, श्रीगोपीनाथजी का वक्षःस्थल एवं श्रीमदनमोहनजी के चरणकमल बहुत ही सुन्दर हैं । कभी कभी श्रीभट्टजी भी उन तीनों श्रीविग्रहों की सेवा पूजा किया करते थे । पूजा करते समय प्रभुओं का दर्शन करके अपने मन में ऐसी प्रार्थना किया करते थे कि— हे माधव ! मुझ किंकर पर भी वह आपकी अहैतुकी कृपा कब होगी जिससे कि, स्वामिन् ! आपने तीनों श्रीविग्रहों को एक ही श्रीविग्रह में एकता प्राप्त हुए देख सकूँ और कृतार्थ होकर प्रतिदिन आपकी उस मनोहर प्रतिमा का पूजन किया करूँ ।।८३-८६।।

एवं विचारयुक्तानामुत्कण्ठा वृद्धिमागता ।
प्रत्यहं भट्टवर्याणां मनो व्याकुलतां गतम् ॥८७॥
वैशाखे च तथा मासे शुक्ले पक्षे तथैव च ।
संवत्सरे परिमिते ग्रहनन्दशरेन्दुभिः ॥८८॥
सायंकाले चतुर्दश्यां शालग्रामशिलाः शुभाः ।
पूजयित्वा यदा सर्वाः शयनार्थं समुद्यताः ॥८९॥
श्रीमद्गोपालभट्टाश्च तदा निद्रा न चागता ।
तथा विग्रहरूपेण प्रभुं प्राप्तुं मनोऽभवत् ॥९०॥
तस्मिन्नेव दिने कश्चिद् भक्तः सेवाऽभिकांक्षया ।
अर्पयित्वा गतस्तेभ्यो वस्त्राण्याभरणानि च ॥९१॥
ततश्चिन्ता समुत्पन्ना वस्त्रादीन् धारयामि क्व ।
यदि विग्रहरूपेण प्रभुरद्य भवेन्मम ॥९२॥
तदा तु सुखितो भूत्वा धारयेयं यथारुचि ।
प्रभुस्त्वतिदयालुर्नो भाग्यहीना वयं ननु ॥९३॥
अतो मनोरथोऽयं नः पूर्तिं याति न मे मतिः ।
यद्यस्माकं भवेत्प्रीतिः सत्या श्रीप्रभुपादयोः ॥९४॥
तदा प्रकटिता नूनं भविष्यन्ति न संशयः ।
यथा प्रह्लादभक्तस्य सत्प्रीति-वशगा द्रुतम् ॥९५॥
स्तम्भादपि प्रकटिताः प्रभवो भक्तवत्सलाः ।
एवं तर्कवितर्कैश्च सम्पूर्णा शर्वरी गता ॥९६॥

पूर्वोक्त विचारों से युक्त श्रीभट्टजी की उत्कण्ठा प्रतिदिन बढ़ती ही गयी और मन व्याकुल हो उठा । वि० सं० १५९९ में वैशाख मास शुक्लपक्ष की चतुर्दशी के सायंकाल मङ्गलमय द्वादश शालग्राम शिलाओं का पूजन कर जब श्रीगोपालभट्टजी शयन करने के लिये उद्यत हुए तो उस समय आपको निद्रा नहीं आयी और विग्रह रूप में प्रभु को प्राप्त करने के लिये मन लालायित हो गया । उसी दिन कोई भक्त सेवा की अभिलाषा से श्रीभट्टजी को ठाकुरजी के लिये वस्त्र एवं आभूषण अर्पण करके चला गया । तदनन्तर श्रीभट्टजी के हृदय में चिन्ता हुई कि—इन वस्त्रादिओं को कहाँ धारण करवाऊँ । यदि आज मेरे भी प्रभु, विग्रह-रूप से होते तो सुखित हो अपनी रुचि के अनुसार धारण करवाता ।

"हमारे प्रभु तो अत्यन्त दयालु हैं, परन्तु हम ही भाग्यहीन हैं । इसीलिए हमारा मनोरथ पूर्ण नहीं हो रहा है," यही मेरा विचार है । परन्तु

यदि श्रीप्रभु के चरणों में हमारी सच्ची प्रीति होगी तो दयालु प्रभु अवश्य ही उसी प्रकार प्रगट हो जायेंगे जैसे कि, भक्तवर्य श्रीप्रह्लादजी की प्रीति के वशीभूत होकर, स्तम्भ से भी प्रगट हुये थे, क्योंकि, प्रभु तो भक्तवत्सल हैं। इस प्रकार के तर्क वितर्कों से सम्पूर्ण रात्रि व्यतीत प्राय हो गयी ।।८७-९६।।

तथाऽश्रूणां प्रवाहैश्च बभूवुः प्लाविताङ्गकाः ।
ततः किञ्चित्समायाता निद्रा तेषां कृते हठात् ।।९७।।
स्वप्नेऽपि भक्तवात्सल्यात् प्रभुणोक्तं द्रुतं ततः ।
वत्स ! मा खिद ते त्विच्छां पूर्णां कर्तुं समागतः ।।९८।।

और अश्रुओं के प्रवाह से सम्पूर्ण अङ्ग भीग गये, तदनन्तर उनके लिये श्रीहरि इच्छा से हठात् किंचित् निद्रा आ गयी। प्रभु ने भी स्वप्न में भक्त वत्सलता से प्रगट होकर यों कहा कि, हे वत्स ! तुम दुःखी मत होओ, मैं, तुम्हारी इच्छा को पूर्ण करने के लिये आ गया हूँ ।।९७-९८।।

ततो निद्राप्यपगता बभूवुश्चोत्थितास्ततः ।
सूर्योदयात्तु प्रागेव कृत्वा स्नानादिकं ततः ।।९९।।
सेवां कर्तुं समुद्युक्ता बभूवुः श्रीहरेर्द्रुतम् ।
प्रभोरुत्थापनं यर्हि कृतं तर्ह्येव दर्शनम् ।।१००।।
श्रीकृष्णचन्द्ररूपेण प्रादुर्भूतस्य वै प्रभोः ।
कृत्वा च दर्शनं भट्टा महानन्दपरिप्लुताः ।।१०१।।
दृष्टाश्च द्वादशस्थाने शालग्रामस्य मूर्तिकाः ।
एकादशमिता नैव श्रीदामोदरमूर्तिका ।।१०२।।
द्वादशी किन्तु तत्स्थाने द्वादशाङ्गुलसम्मिता ।
श्रीकृष्णचन्द्रप्रतिमा मूर्तिरेका मनोहरा ।।१०३।।

पश्चात् निद्रा दूर हुई, आप उठकर बैठ गये। तदनन्तर सूर्योदय से पहले ही स्नानादि नित्य कर्म करके शीघ्र ही श्रीहरि की सेवा करने के लिये तत्पर होगये। आपने जब श्रीहरि का उत्थापन कराया तभी श्रीकृष्णचन्द्र-रूप से प्रादुर्भूत प्रभु का दर्शन किया, दर्शन करते ही श्रीभट्टजी आनन्द में विभोर हो गये और बारह शालग्राम मूर्तियों के स्थान पर, ग्यारह ही शालग्राम देखे, किन्तु बारहवीं शालग्राम की दामोदर मूर्ति नहीं देखी, अपितु उसके स्थान पर बारह अँगुल की अत्यन्त मनोहर श्रीकृष्णचन्द्र की मूर्ति के समान एक मूर्ति का दर्शन किया ।।९९-१०३।।

दृष्ट्वा मनोहरां मूर्तिं हर्षो माति न मानसे ।
प्रेमाश्रूणि च भट्टानां भूषयामासुराननम् ।।१०४।।

उपजातिरियम्—

यथा यथा पश्यति भट्टवर्यः प्रेमाकुलः श्रीहरिसौम्यमूर्तिम् ।
तथा तथा श्रीहरिदर्शनस्य वाञ्छा सुवृद्धि हि गता बभूव ॥१०५॥

मनमोहिनी मूर्ति का दर्शन कर, हर्ष मन में नहीं समाता था, श्रीभट्टजी के मुखारविन्द को प्रेमाश्रुओं ने विभूषित कर दिया। प्रेमाकुल श्रीभट्टजी, जैसे जैसे श्रीहरि की सौम्य-मूर्ति का दर्शन करते हैं तैसे तैसे ही श्रीहरि-दर्शन की अभिलाषा और भी वृद्धि को प्राप्त होती जा रही थी ॥१०४-१०५॥

एष सर्वस्तु वृत्तान्तो ज्ञातो भक्तैर्यदा तदा ।
श्रीसनातनरूपाद्यैः सहिताः शीघ्रमायपुः ॥१०६॥

कृत्वा च दर्शनं तेऽपि निमग्ना हर्षसागरे ।
भाग्यं गोपालभट्टानां प्रशशंसुर्मुहुर्मुहुः ॥१०७॥

शालिनीवृत्तमेतत्—

मूर्तं भाग्यं भट्टवर्यस्य दृष्टं, मूर्त्तः प्रेमा किन्न दृष्टोऽस्मकाभिः ।
शालग्रामादप्यहो प्राणनाथं, प्रादुर्भूतं येन पश्याम सर्वे ॥१०८॥

यह सम्पूर्ण वृत्तान्त जब भक्तों को विदित हुआ तो वे सब, श्रीसनातन रूपादिकों के सहित शीघ्र ही वहाँ पधारे। वे भी श्रीश्यामसुन्दर का दर्शन करके हर्ष सागर में निमग्न हो गये, और बारम्बार श्रीगोपालभट्टजी के भाग्य की प्रशंसा करने लग गये कि, अहह ! श्रीभट्टवर्य के मूर्तिमान् भाग्य का हमने दर्शन कर लिया, और श्रीभट्टजी के मूर्तिमान् प्रेम का भी दर्शन हमने कर लिया, कारण कि, इन्हीं के भाग्य एवं प्रेम के बलपर हम सब भी, श्रीशालग्रामजी से प्रगट हुए,अपने प्राणनाथ का दर्शन कर रहे हैं ॥१०६-१०८॥

आनन्दपूर्वकं पश्चादभिषेकः कृतः प्रभोः ।
शृङ्गारश्च कृतः सम्यक् सुन्दरैर्वस्त्रभूषणैः ॥१०९॥

ततः सिंहासने शुभ्रे प्रभुः सज्जो विराजितः ।
अन्तर्दधे हरिर्यत्र त्यक्त्वा राधां सुदुःखिताम् ॥११०॥

आविर्भूतो यथा वारम्वारं सम्प्रार्थितस्तया ।
तथा गोपालभट्टानां प्रेमप्रार्थनया मुहुः ॥१११॥

पुनः प्रकटितस्तत्र विचार्याऽतस्तु साधुभिः ।
नामधेयं हरेस्तर्हि श्रीराधारमणं कृतम् ॥११२॥

पश्चात् आनन्द पूर्वक सब भक्तों ने मिलकर प्रभु का अभिषेक किया, और सुन्दर सुन्दर वस्त्र आभूषणादिकों से शृङ्गार किया, तदनन्तर सुसज्जित प्रभु को शुभ्र सिंहासन पर विराजमान करवा दिया, और जिस स्थान पर रासलीला में परम दुखित हुई श्रीराधिकाजी को छोड़कर, श्रीहरि अन्तर्हित हुये थे, तथा श्रीराधिकाजी के द्वारा बारम्बार प्रार्थना करनेपर जिस-प्रकार प्रगट हुये थे, बस उसी प्रकार उसी स्थानपर आज भी श्रीगोपालभट्ट की प्रेममयी प्रार्थना से प्रभु पुनः प्रकट हुये हैं, इसी अभिप्राय से साधुओं ने विचारकर प्रभु का "श्रीराधारमण" ऐसा नाम-करण कर दिया ॥१०९-११२॥

आविर्भावोऽप्यसौ प्रोक्तो दासेन वनमालिनः ।
अस्त्वसौ प्रीतये श्रीमद्भट्टगोपालस्वामिनः ॥११३॥

बोलो भक्त-वत्सल भगवान् श्रीराधारमणलालजी की जय। यह श्रीराधारमणजी का आविर्भाव महोत्सव भी 'वनमालिदास'-नामक व्यक्ति ने कह सुनाया। यह ग्रन्थ "श्रीगोपालभट्ट गोस्वामीजी की प्रसन्नता का कारण हो जाय" यही ग्रन्थकार की अभिलाषा है ॥११३॥

गोलोके वर्तमानस्य स्वाचार्यस्य कराब्जयोः ।
भावेन दीयते चेदं दिव्य-दृष्टया स पश्यतु ॥११४॥

इस समय दिव्य-धाम श्रीगोलोक में श्रीकृष्णचन्द्र के मित्र-रूपेण विराजमान हमारे श्रीगुरुदेवजू के कर-कमलों में यह "शतक" मैं भावपूर्वक अर्पण करता हूँ। मेरे प्यारे दयालु श्रीगुरुदेवजी इसको मेरे सहित दिव्य दृष्टि से देखें ॥११४॥

द्रुतविलम्बितद्वयमितः—

यदपि चित्रमलंकृतिमद्वचो, भवति यत्र हरेर्न यशोऽमलम् ।
परमहंसकुलैरनिषेवितं, तदिह वायसतीर्थमुदीरितम् ॥११५॥

"जो वाक्य विन्यास अर्थात् काव्य, यद्यपि चित्रकाव्य एवं अलंकारों से युक्त है, तथापि जिसमें श्रीहरि का निर्मल यश नहीं गाया है तो वह काव्य, परमहंसों के द्वारा असेवित होने के कारण, काक-तीर्थ तुल्य तुच्छ ही है", ऐसा श्रीमद्भागवतादि शास्त्रों में कहा गया है ॥११५॥

यदनलंकृतिमद् वचनं समं, परमनन्तयशोऽङ्कितनामवत् ।
सदसि साधुजना निगदन्ति त-,न्निखिलपापिजनाघविनाशनम् ॥११६॥

और जो काव्य, सम्पूर्ण अलङ्कारों से रहित भी है परन्तु यदि अनन्त भगवान् के यश से अंकित नामोंवाला है तो, साधुजन उस काव्य को "सब पापियों के पापों को दूर करनेवाला है" ऐसा सत्सभा में कहते हैं ।।११६।।

शार्दूलविक्रीडितमिदम्—

येषां प्रेमसुदामबद्धहरिणा रूपं स्वकं दर्शितं
नित्यस्थायि तथा च भट्टपरिवारं भाग्यवन्तं तु यत् ।
संसारे निगदत्यहो किमधिकं ब्रूमस्ततो नित्यदा
पापास्तांस्तु मुहुर्नताः स्म शिरसा गोपालभट्टान् वयम् ।।११७।।

जिनकी प्रेमरूपी डोरी में बँधकर, श्रीहरि ने नित्य-स्थायी अपना परम-मनोहर रूप प्रगट कर दिखलाया, तथा जो श्रीराधारमणजी का रूप ही भट्टजी के परिवार को संसार में सर्वश्रेष्ठ भाग्यवान् बतला रहा है, अतः अधिक क्या कहैं, हम पतित तो, उन्हीं पूज्यचरण श्रीगोपालभट्टजी को प्रतिदिन बारम्बार नत मस्तक होकर प्रणाम करते हैं ।।११७।।

मालिनीवृत्तमेतत्—

प्रणयगुणनिबद्धो यस्य साक्षात्स राधा-
रमण इह तु शालग्रामतश्चाविरासीत् ।
सकलगुणगरिष्ठः सर्वशास्त्रार्थनिष्ठो
वितरतु स हि मह्यं प्रेम गोपालभट्टः ।।११८।।

और जिनकी प्रेमरूपी डोरी में बँधकर साक्षात् श्रीराधारमणजी भी, शालग्राम की शिला से प्रगट हो गये, और जो, सब गुणों से गौरवान्वित थे एवं जो सब शास्त्रों के तात्पर्य को जानते थे वे ही श्रीगोपालभट्ट गोस्वामीजी, मेरे लिये प्रेम का वितरण करें ।।११८।।

शार्दूलविक्रीडितम्—

आविर्भावमहर्मया निगदितं राधापतेरद्भुतं
शालग्रामतनोर्यथा समभवद् गोपालभट्टप्रियम् ।
आविर्भावनिवर्णने यदि मया चाऽशुद्धयोऽपीरिता
विद्वद्भिस्तु तथापि बाल इति मां मत्वा क्षमा दास्यते ।।११९।।

श्रीगोपालभट्टजी को परम प्रिय यह श्रीराधारमणजी का अद्भुत आविर्भाव महोत्सव, श्रीशालग्रामजी की शिला से जिसप्रकार हुआ था, वह मैंने, कह सुनाया । इस आविर्भाव के वर्णन करने में यदि मैंने, कोई त्रुटियाँ

भी कर दी हों तो भी, विद्वज्जन तो यह "अत्यल्पवयस्क बालक है" इस हेतु से क्षमा ही प्रदान करेंगे ॥११९॥

ग्रन्थसमाप्तिकालमधुनाऽभिधत्ते वसन्ततिलकया—

नन्दग्रहग्रहमहीनिमिते हि वर्षे, श्रीविक्रमार्कनृपतेरपि पौर्णमास्याम् ।
वैशाखमासि शतकं त्विदमादरेण, वृन्दावने लिखितवान् वनमालिदासः ॥१२०

वि० सं० १९९९ के वैशाख शुक्ला पौर्णमासी के दिन श्रीधाम वृन्दावन में ही इस "श्रीराधारमण शतक" को आदरपूर्वक, शास्त्री श्रीवनमालिदासजी ने लिखा है ॥१२०॥

इति श्रीनिखिलशास्त्रपारावारपारदृश्व-सख्यावताराष्टोत्तरशत-स्वामिश्रीकृष्णानन्ददासजी-महाराज-शिष्येण काव्य-वेदान्त-तीर्थेन घटिकाशतकेन महाकविना श्रीवनमालिदासशास्त्रिणा विरचितं

श्रीराधारमणशतकं सम्पूर्णम्

★

समाधि-लेखः

(लेखक—श्रीवनमालिदासजी शास्त्री)

मतिमतां हि समाधितटे जना !, लिखत यैरियमुज्ज्वलिता मही ।
सुरगुरुः पदमादरतस्तथा, धनवतां तु कुबेर इतीव भोः ॥१॥
शूरा भीष्मार्जुनावित्यतिविमलपदैर्माननीया भवद्भिः
सौन्दर्ये योजनीयं विमलकुसुममित्युक्तिभाग्गौरवेण ।
एतल्लेख्यं समाधेरुपरि कविवरस्यापि कर्णे कुरुध्वं
मत्तानां कोकिलानामिव च कुहु कुहूः शब्दयुग्मं वसन्ते ॥२॥

अनुवादक—कुँवर हरिश्चन्द्रदेव वर्मा "चातक"

विद्वानों को लिखो वृहस्पति, उज्ज्वल जिनसे हुई मही ।
श्रीमानों की शुभ-समाधि-पर, धन-कुवेर तुम लिखो सही ॥१॥
शूरवीर को भीष्म और अर्जुन लिखकर सम्मान करो ।
कोमल कुसुम बताकर सुन्दरता को गौरव दान करो ॥
किन्तु सखे ! कवि की समाधि पर लिखना यह सुनलो श्रुति खोल ।
मस्ती भरे वसन्त कोकिला के 'कूऊ' 'कूऊ' दो बोल ॥२॥

श्रीहरिभक्तेभ्यो नमः
श्रीरामकृष्णौ विजयेतेतमाम्

श्रीभक्तनाम-मालिका

उपनाम—

(श्रीभक्त-सहस्रनाम)

श्रीभक्तनामस्रगियं मनुजैः स्वकण्ठे,
यैर्धास्यते प्रतिदिनं हरिसन्निधाने ।
भुक्त्वा हरेः करुणया भुवि सर्वसौख्यं,
सम्प्राप्स्यते सुखतया हरिसन्निधिस्तैः ॥

सा च—

निखिलशास्त्रपारावारपारदृश्व-सख्याऽवताराष्टोत्तरशत-स्वामि
श्रीकृष्णानन्ददासजीमहाराज-शिष्येण श्रीगोपालचम्पू-
श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पू-श्रीपद्यावली-श्रीभक्ति-
ग्रन्थमाला-श्रीस्तवरत्ननिधि-प्रभृतिप्राचीन-
ग्रन्थानां टीकाकारेण काव्यवेदान्त-
तीर्थेन घटिकाशतकेन महाकविना
श्रीवनमालिदासशास्त्रिणा
गुम्फिता ।

तेनैव संशोधिता प्रकाशिता च

द्वितीयावृत्तिः ५०० | श्रीगौराङ्ग जयन्ती वि० सं० २०३२ | निछावर प्रेम पूर्वक पाठ

❋ श्रीहरिः शरणम् ❋

श्रीभक्तनाम-मालिका की विशेषता—

इस छोटी-सी पुस्तिका का तात्त्विक माहात्म्य एवं फल-श्रुति का वर्णन करना इस कलिहत जीव के लिये अत्यन्त ही असंभव है, परन्तु फिर भी लेखक महोदय की प्रेरणा आदरणीय है। इस पुस्तिका में महाकवि की सबसे बड़ी यह विशेषतायें हैं कि, जो भावुक-भक्त एवं विद्वानों के लिये परमोपयोगी हैं। प्रथम श्री १०८ श्रीस्वामी नाभाजी ने अपनी भक्तमाल में जिन महापुरुषों के नाम, प्रेम-विस्मृति से नहीं उट्टङ्कित किये थे, उनके नाम भी बड़ी गवेषणा के सहित, पुराणादिकों से चुनकर अंकित किये हैं। द्वितीय—श्लोकों के पूर्व में पाठकों की सुविधा के लिये छन्दों के नाम निदर्शन किये हैं, तृतीय सम्पूर्ण छन्दावली भक्तिभाव परिपूरित है तथा इसमें सहस्रोपरिभक्तों के नाम होने से इसका "भक्तसहस्रनाम" भी उपयुक्त ही है। 'अस्तु' जैसे श्रीभक्तमालाकार (नाभासखी) ने सतयुगादि भक्तों की सूक्ष्म चरित्र सहित नाम-माला, सख्यादिक पाँच रसों की थाक लगाकर अपने प्रियतम श्रीराघवेन्द्र सरकार को भावपूर्वक पहनाई थी, तद्वत् यहाँ भी श्रीयुतवनमालिदासशास्त्रीजी ने स्वकीय मित्र-भाव से अपने सखा श्रीव्रजराज-कुमार को सर्वरस-पूर्ण विविध छन्दों की थाक लगाकर अत्यन्त स्नेह पूर्वक चरणावलम्बिनी यह "भक्तनाम-मालिका" पहनायी है।

माहात्म्य—

दोहा—भक्ति भक्त भगवन्त गुरु, चतुर नाम वपु एक।
इनके पद बन्दन किये, नाशत विघ्न अनेक॥

इस स्वामी नाभाजी कृत आदिम मङ्गलाचरण के दोहानुभार भक्तों के नामों का माहात्म्य भक्तवत्सल से न्यून नहीं है बल्कि **'मद्भक्त पूजाभ्यधिका'** इत्यादि श्रीमुख वचनानुसार विशेष ही कहना होगा। किसी कवि ने इस विषय में कैसा अनुपम चित्रण किया है—

दोहा—भक्त वड़े भगवान् से, चारों युग परमान।
सेतु बाँध रघुवर गये, कूदि गये हनुमान॥
भक्तदाम संग्रह करै, पठन श्रवण अनुमोद।
सो प्रभु प्यारौ पुत्र ज्यों, बैठे हरि की गोद॥

भक्तचरणरजोभिलाषी—

वि० सं० २००७

रामहरिदासः

※ श्रीरामकृष्णौ विजयेतेतमाम् ※

श्रीभक्तनाम-मालिका

स्रग्धरा छन्दः—

श्रीकृष्णं प्रापयन्ती सकलजनमनोदोहदं दापयन्ती
पापाद्रिं दारयन्ती गुरुभवजलधेरञ्जसा तारयन्ती।
कामादीन्नाशयन्ती निखिलरिपुगणान् वासनां शासयन्ती
भक्तानां नामगङ्गाऽवतु मम रसना-भूमिभागे पतन्ती ॥१॥

वसन्ततिलका-वृत्तमेतत्—

लोपं विलोक्य भुवि सख्यरसस्य तस्य, सञ्चारणाय हरिणा कलकण्ठनामा।
सम्प्रेषितो य इह तं व्यतरज्जनेभ्य-,स्तं श्रीगुरुं स्वकमहं शरणं व्रजामि ॥२

इतः श्लोकपञ्चके पञ्चचामर-वृत्तं ज्ञेयम्

हरिः प्रसन्नतां तथा न याति नामकीर्तनैः
स्वकैर्यथा निसर्गतः स्वभक्तनामकीर्तनैः।
इतीव चिन्तयन्नहं करोमि भक्तमालिका-
क्रमेण कृष्णप्रीतये तु भक्तनाम-मालिकाम् ॥३॥

नमामि भक्तमालिका-गतानहं पुरा सतः
ततस्तु प्रार्थये भृशं विनीतभावतः स्थितः।
यदि व्यतिक्रमः[1] क्वचित्तु वृत्तभङ्गभीरुणा
मया कृतो भवेत् तदाऽपि मर्षयन्तु सज्जनाः ॥४॥

विरिञ्चि-नारदौ शिवः कुमार-कर्दमात्मजौ
मनुः कयाधुनन्दनो विदेहजश्च भीष्मकः।
बलिः शुकश्च धर्मराडिमेऽवयन्ति द्वादश
सुधर्ममन्तरङ्गमन्तरङ्गताङ्गता अतः ॥५॥

१—अर्थात् पूर्वं वर्तमानस्य नाम्नः पश्चाल्लेखनं पश्चाद्वर्तमानस्य च पूर्वं लेखनं यन्मया विहितं तत्तु वृत्तस्य भङ्गो माभूदिति भियैव न तु पूज्याऽपूज्यविवेकेनेति वृत्ततत्त्वविद एव विदाङ्कुर्वन्तुतराम्।

अजामिलस्ततो हरेरमी प्रधानपार्षदाः
सुषेण-विश्वगर्वसेनकौ जयो विपूर्वकः ।
जयो बलः प्रपूर्वको बलः सुनन्द-नन्दकौ
सुभद्र-भद्रकौ ततः प्रचण्ड-चण्डकौ मतौ ॥६॥

कुपूर्वको मुदः कुपूर्वको मुदाक्षकस्ततः
सुशील-शीलकौ मतौ कप्रत्ययोऽत्र स्वार्थिकः ।
इमे हरिं सदैव प्रीणयन्ति सर्वभावतो
मनो गतिर्ममाऽस्तु तत्र यत्र पार्षदा हरेः ॥७॥

इतः श्लोकपञ्चके शार्दूलविक्रीडितम्

श्रीलक्ष्मीर्गरुडः समीरतनयः श्रीजाम्बवानुद्धवः
सुग्रीवः शवरी विभीषण-जटायू अम्बरीषो ध्रुवः ।
अक्रूरो विदुरः सुदाम-गजराज-ग्राह-भीमाऽर्जुनाः
मैत्रेयो नकुलो युधिष्ठिर-सदेवौ चन्द्रहासः कृती ॥८॥
कुन्ती द्रौपदिका सदा विजयते श्रीचित्रकेतुः कृती
अङ्गः श्रीश्रुतदेवकश्च मुचुकुन्दः श्रीपरीक्षित्पृथू ।
शेषः शौनकमुख्यकाः प्रियव्रतः सूतः प्रचेतोगणः
आकूतिश्च प्रसूतिरस्ति शतरूपा देवहूतिः सती ॥९॥
गोप्यो यज्ञसती सुनीतिरपरा[1] मन्दालसा पार्वती
वाल्मीकिश्च भगीरथश्च सगरो वाल्मीकिरन्योऽपि च ।
श्रीसत्यव्रत-ताम्रकेतु-सुरथाः प्राचीनवर्हिः शिविः
श्रीरुक्माङ्गदराडलर्कभरतौ नीलो[2] मयूरध्वजः ॥१०॥
श्रीविन्ध्यावलिजी रहूगण-सुधन्वानौ हरिश्चन्द्रकः
इक्ष्वाकुश्च दधीचिरैल ऋभुगाधी श्रीरघुः श्रीगयः ।
उत्तङ्कश्च रयोऽप्यमूर्तिनहुषौ वैवस्वतः श्रीमनुः
भूरिर्देवलरन्तिदेवशतधन्वानो यतातिर्यदुः ॥११॥
मान्धाता निमि-पिप्पलायन-भरद्वाजा दिलीपो गुहः
पूरुर्दक्ष-शमीक-सञ्जयवरा उत्तानपादस्तथा ।
मत्ताङ्गः शरभङ्गको विजयते श्रीयाज्ञवल्क्यो मुनिः
एतेषां चरणाब्जधूलिषु मनः स्नातुं ममोत्कण्ठते ॥१२॥

१—सुरुचिः ध्रुवस्य विमाता । २—नीलध्वजः ।

हरिणी-वृत्तमेतत्—

कविरथ हरिः पूज्यः श्रीपिप्पलः करभाजनो
द्रुमिल-चमसावाविर्होत्रोऽन्तरिक्ष-प्रबुद्धकौ ।
भजनचतुरा जायन्तेया इमे गदिता नव
निमिसदसि ते पूज्यन्ते कौ यथा च नवग्रहाः ॥१३॥

पञ्चचामर-वृत्तमेतत्—

अगस्त्य-सौभरी पुलस्त्य-गर्ग-गौत्तमा भृगु-
र्वसिष्ठ-कर्दमाऽत्रिलोमशा ऋचीक-कश्यपौ ।
पराशरोऽङ्गिराश्च दूर्विकाशनश्च पर्वतो
विभाण्डकश्च व्यासशिष्य ऋष्यश्रृङ्ग-दाल्भ्यकौ ॥१४॥

इतः श्लोकद्वये उपजातिः

अरिष्टनेमिः कवषः सुतीक्ष्णो, मेधातिथीन्द्रप्रमदेध्मवाहाः ।
उतथ्य और्वोऽप्यरुणः शरद्वान्, धौम्योऽप्ययोध्याधिप आर्ष्टिषेणः ॥१५॥
सरस्वती तुम्बुरुरुग्रसेनो, व्याधो गणेशो नृगदारुकौ च ।
अरुन्धतीगार्ग्यनसूयिका च, मैत्रेयिका वायक[1] एव कुब्जा ॥१६॥

इतः श्लोकाष्टकेअनुष्टुब्-वृत्तम्

कौशल्या च सुमित्रा च कैकेयी सरमा रुमा ।
सुनयनाऽप्यञ्जनाऽहल्या तारा मन्दोदरी तथा ॥१७॥
पिङ्गला च सुदामा[2] च वैशम्पायन आरुणिः ।
जैमिनिर्वरुणश्चैव कुवेरतनयौ तथा ॥१८॥
वीतिहोत्रो मधुच्छन्दा वीरसेनोऽकृतव्रणः ।
अथर्वा सुमतिः पैलः सुमन्तुर्द्रोण आसुरिः ॥१९॥
विश्वामित्रोऽथ जावालिर्माण्डव्यश्च्यवनस्तथा ।
मार्कण्डेयोऽथ पुलहो जमदग्निस्तथैव च ॥२०॥
द्वैपायनः शतानन्दो वामदेवोऽसितोऽरुणिः ।
द्वितस्त्रितश्चैकतश्च कण्वो रामश्च गालवः ॥२१॥
रुक्मिणी सत्यभामा च सत्या जाम्बवती तथा ।
मित्रविन्दा च कालिन्दी भद्राऽन्या लक्ष्मणा तथा ॥२२॥

१—श्रीरामकृष्णयोर्मथुराऽवलोकन-समये यो वेशमकल्पयत् स इत्यर्थः ।
२—मथुरावलोकन-समये श्रीरामकृष्णयोर्गले यो मालामार्पयत् स इत्यर्थः ।

भौमगेहगताः कन्याः सहस्राणि च षोडश ।
कृष्णेन मोचिताः काराज्जरासन्धस्य भूभुजः ॥२३॥
अष्टादशपुराणानि स्मृतयोऽष्टादशैव च ।
एते च स्मृतिकर्तारो ज्ञेया निम्नाङ्किता बुधैः ॥२४॥

श्लोकद्वये वसन्ततिलका-वृत्तम्

अत्रिर्मनुर्यमवृहस्पतियाज्ञवल्क्या, हारीतगौत्तमशनैश्चरदक्षशंखाः ।
कात्यायनक्रतुवसिष्ठपराशराश्च, विष्णुः शतातपवराङ्गिरसौ सँवर्तः ॥२५॥
धृष्टिर्जयन्तविजयौ खलु धर्मपालः, श्रीराष्ट्रवर्धनसुराष्ट्रसुमन्त्रवर्याः ।
निष्कोप एत इह राघवमन्त्रिवर्या, अष्टौ मया निगदिता हरिभक्तिप्राप्त्यै ॥२६॥

तोटकवृत्तमेतत्

पनसोऽङ्गद-गन्धमद-द्विविदाः, कुमुदो नल-नील-दरीवदनाः ।
शरभो दधितुण्ड-सुषेण-मय-,न्द-गवाक्षवराः सुभटो गवयः ॥२७॥

इतः श्लोकद्वये इन्द्रवज्रा-वृत्तम्

श्रीदेवमीढस्य बभूवतुर्द्वे, भार्ये हि विट्क्षत्रियवंशजाते ।
पर्जन्यनामाऽजनि वैश्यपुत्र्या, राजन्यपुत्र्याऽपि च शूरसेनः ॥२८॥
श्रीशूरसेनाद् वसुदेवनामा, भार्याऽभवद् यस्य च देवकीति ।
पर्जन्यनाम्नोऽपि च गोपराजा-,न्नन्दादयो वै नव संबभूवुः ॥२९॥

पज्झटिका-वृत्तम्

उपनन्दो नन्दोऽप्यभिनन्दः, कर्मानन्दो धर्मानन्दः ।
धरानन्द-ध्रुवनन्द-सुनन्दा, वल्लभनन्द इमे नवनन्दाः ॥३०॥

शिखरिखी वृत्तमेतत्

यशोदारोहिण्यावपि च वृषभानुश्च जयति
सुकीर्तिः श्रीराधा पशुपयुवतीमण्डलगता ।
कदम्वाद्या वृक्षा भ्रमर-मृग-वृन्दावनलता
रवेः पुत्री गोवर्धनगिरिरथान्यच्च सकलम् ॥३१॥

इतः श्लोकद्वये अनुष्टुब्-वृत्तम्

ललिता च बिशाखा च रङ्गदेवी सुदेविका ।
चित्रा च चम्पकलता तुङ्गविद्येन्दुलेखिका ॥३२॥
श्रीराधिका-सखीव्यूहे त्वष्टसख्य इमा स्मृताः ।
आसां पादरजश्चित्तं मूर्ध्ना वोढुं ममोत्सुकम् ॥३३॥

द्रुतविलाम्बित-वृतम्

सुबल-कोकिल-भंगुर-भारती-,सुमधुमङ्गल-वन्ध-वसन्तका: ।
गृहल-गन्ध-कडार-सनन्दनार्जुन-विदग्धक-सांधिक-हंसका: ।।३४।।

स्वागतावृत्तम् श्लोकद्वये

गोभटर्षभ-सुवाहुक-भोजा:, श्रीसुदाम-विजयौ कलविङ्क: ।
देवप्रस्थ-वसुदाम-सुयक्षा:, श्रीलदाम-वृषभेन्द्रभटाश्च ।।३५।।
वीरभद्र-बलभद्र-सुभद्रा:, स्तोककृष्ण-मणिबन्ध-विटङ्का: ।
भद्रसेन-सुविशाल-करण्डा-,दाम-किङ्किणि-वरूथप-वेधा: ।।३६।।

इतः श्लोकद्वये पज्झटिकावृत्तम्

भद्रवर्धन-शिवौ च सुकण्ठ:, मङ्गलांशुकपिला: कलकण्ठ: ।
उज्ज्वलश्च सुमना ओजस्वी, पल्लवश्च वकुलस्तेजस्वी ।।३७।।
पुण्डरीक-कुलवीर-मिलिन्दा:, महाभीम-रणभीम-कलिन्दा: ।
सुरेश-विलासि-शरप्रभ-कुन्दा:, पुष्पहास-रणधीर-मरन्दा: ।।३८।।

उपजाति-वृत्तमेतत्

इमे सखायो व्रजराजसूनो:, सर्वप्रकारै: सुखयन्ति नित्यम् ।
कुर्वन्तु दीने करुणां मयोमे, यथा भवेयं सखिषु प्रविष्ट: ।।३९।।

श्लोकद्वये पज्झटिका-वृत्तम्

रक्तक-वकुलौ प्रेमाकन्द:, पत्रक-मधुवर्तौ मकरन्द: ।
पत्रि-रसाल-विशाल-शारदा-,श्चन्द्रहास-मधुकण्ठ-पयोदा: ।।४०।।
सदानन्द-रस-बुद्धिप्रकाशा, उक्ता: कृष्णस्यैते दासा: ।
गृहे वने सर्वत्र दिनान्ते, हरिं यथा-समयं सेवन्ते ।।४१।।

शार्दूलविक्रीडितमेतत्

सप्तद्वीपनिवासिनश्च नवखण्डान्तर्गता ये जना:
श्वेतद्वीपनिवासिनश्च किल ते भक्तास्तु भूपा मम ।
एला पल्लव-शेष-कम्बल-महापद्मास्तथा वासुकि:
शंकुस्तक्षक इत्यमी उरगराजोऽष्टौ सकर्कोटका: ।।४२।।

पंचचामरमेतत्

कृतादिकत्रिकेऽभवन्निमे समेऽपि वैष्णवा:
अनन्तकोटिवैष्णवेष्विमे प्रसिद्धिमागता: ।
अतोऽङ्किता मया सहर्षमन्यवैष्णवानहं
कथं लिखामि दिव्यदृष्टिरस्ति नोऽल्पमेधस: ।।४३।।

उपजातिरेषा—

एवं कृतादित्रिकजातभक्त-,नामावलीं हर्षभरेण गायन् ।
प्रवर्तते श्रीकलिजातभक्त-,नामानि गातुं वनमालिदासः ॥४४॥

इतः श्लोकाष्टके पज्झटिका-वृत्तम्

कलिहत-जीवानां तरणाय, श्रीहरिपादाम्बुजवरणाय ।
चत्वारश्चतुरैरतिललिता, मार्गाः पूर्वाचार्यैः कलिताः ॥४५॥
तेषां नामानीह लिखामः, पूर्वं मूर्ध्ना तान् प्रणमामः ।
श्रीरामानुज-मध्वाचार्यौ, श्रीलविष्णु-निम्बार्काचार्यौ ॥४६॥
श्रीशठकोप-वोपदेवौ च, नाथमुनि-पुण्डरीकाक्षौ च ।
राममिश्रजि-परांकुशवर्यौ, श्रीयामुनमुनि-पूर्णाचार्यौ ॥४७॥
कूरेशश्च धनुर्दासश्च, श्रुतिप्रज्ञः श्रीश्रुतिदेवश्च ।
श्रुतिधामा श्रीश्रुतिउदधिश्च, लालाचार्यः पादपद्मश्च ॥४८॥
देवाचार्यो हर्यानन्दः, राघवानन्दो रामानन्दः ।
श्रीलकवीरोऽनन्तानन्दः, सुखानन्दः सुरसुरानन्दः ॥४९॥
पद्मावती नरहर्यानन्दः, श्रीपीपाः श्रीभावानन्दः ।
गालवानन्दो योगानन्दः, रैदासश्च धनाः कर्मचन्दः ॥५०॥
सेनोऽल्हः सुरसुरी गयेशः, पयोव्रतः श्रीलकृष्णदासः ।
राणाः सारीरामसुदासः, श्रीरङ्गः श्रीनरहरिदासः ॥५१॥
कुल्हुराज-कील्हावग्रदासः, केवलदासश्चरणसुदासः ।
व्रते हठी नारायणदासः, पृथुदासः पुरुषोत्तमदासः ॥५२॥

इतः श्लोकद्वये इन्द्रवज्रा-वृतम्

श्रीसूर्यदासस्त्रिपुरस्य दासो, गोपालदासश्च हि पद्मनाभः ।
श्रीटेकरामश्च गदाधरः श्री-,टीलास्ततः श्रीयुतदेवपण्डाः ॥५३॥
कल्याणदासः खलु हेमदासो, गंगा च रंगा च हि विष्णुदासः ।
श्रीचाँदनः कान्हनरदासवर्यो, गोविन्ददासश्च सवीरिवर्यः ॥५४॥

उपजाति-वृतम्

सुमेरदेवश्च हि मानसिंहो, नाभावरः श्रीयुतशंकरार्यः ।
पद्मार्य-पृथ्वीधरकार्यवर्यौ, श्रीतोटकाचार्य-स्वरूपकार्यौ ॥५५॥

इन्द्रवज्रा-वृत्तम्

श्रीवामदेवश्च हि नामदेवः, श्रीज्ञानदेवश्च त्रिलोचनश्च ।
पद्मावती श्रीजयदेववर्यः, श्रीश्रीधरो विल्वसुमङ्गलश्च ॥५६॥

पञ्झटिका-वृत्तम्

चिन्तामणि: श्रीलक्ष्मणभट्ट:, परमानन्दो वल्लभभट्ट: ।
विष्णुपुरी: कुलशेखरभक्त:, रतिमन्ती लीलारतभक्त: ।।५७।।

उपजातिवृत्तमेतत्

प्रसादनिष्ठ: पुरुषोत्तमे नृप:, सिल्पिल्लभक्तेऽलमुभे हि बालिके ।
कर्मा च भक्तार्थविषप्रदे ह्युभे, स्वस्त्रीयभक्तश्च हि मातुलस्तथा ।।५८।।

शार्दूलविक्रीडितम्

हंसाश्चैव सदाव्रती भुवनचौहानश्च कामध्वजो
ग्वाल: श्रीहरिपालको जयमल: श्रीसाक्षिगोपालक: ।
सस्त्रीकद्विजरामदासवर-जस्सुस्वामि-वाराङ्गना:
अन्तर्निष्ठ-सुवेषनिष्ठ-नृपती श्रीनन्ददासस्तथा ।।५९।।

इत: श्लोकद्वये पञ्झटिका

गुरुनिष्ठो लड्डूभक्तश्च, पद्मनाभ-तत्वाजीवाश्च ।
माधवदासविज्ञगोस्वामी, श्रीरघुनाथदास-गोस्वामी ।।६०।।

श्रीबलदेव-कृष्णनामानौ, याववतीर्णौ भुवि भूमानौ ।
नित्यानन्द-कृष्णचैतन्यौ, तावेव हि गदितौ नहि चान्यौ ।।६१।।

इत: शार्दूलविक्रीडितं श्लोकपंचके

अद्वैतश्च सनातनश्च वररूपो माधवेन्द्र: पुरी
जीव: श्रीरघुनाथभट्ट इतरौ गोपालभट्टस्तथा ।
श्यामानन्द-गदाधरावपि शची लक्ष्मीश्च विष्णुप्रिया
श्रीगोपालगुरुस्तथा नरहरि: श्रीमज्जगन्नाथक: ।।६२।।

श्रीमत्केशवभारतीश्वरपुरीवर्यौ च विद्यानिधि:
श्रीनाथश्च मुकुन्द-राम-हरिदासा: श्रीनृसिंहस्तथा ।
श्रीवासश्च हि सार्वभौम-जगदानन्दौ प्रतापो नृप:
श्रीदामोदर-शंकरावपि मनोहारि-प्रियादासकौ ।।६३।।

श्रीवक्रेश्वर-चन्दनेश्वर-मुरारि-श्रीस्वरूपप्रबो-
धानन्दाश्च हि विश्वनाथ-बलदेव-श्रीलगोविन्दका: ।
श्रीशुक्लाम्बर-कृष्णदासकविराज-श्रीशिवानन्दका:
श्रीकान्त: कविकर्णपूर उदित: श्रीविश्वरूपस्तथा ।।६४।।

श्रीहाडाइरु वीरचन्द्र-वसुधा-पद्मावती-जाह्नवा:
गौरीदास-नरोत्तमौ नकुलवर्णी श्रीनिवासस्तथा ।
भूगर्भश्च सनातनश्च वसुरामानन्दक: श्रीधर:
सीता-भट्टगदाधरौ तपनमिश्रो माधवाचार्यक: ।।६५।।
श्रीनीलाम्बरको मुरारिरसिक: श्रीवल्लभाचार्यक:
प्रद्युम्नश्च हि रामचन्द्र-तुलसीमिश्रौ सुखानन्दक: ।
कृष्णानन्दपुरी नृसिंहसुपुरी श्रीलक्ष्मणाचार्यक:
श्रीवृन्दावनदास-हर्ष-हृदयानन्दाश्च काशीश्वर: ।।६६।।

वसन्ततिलकावृत्तमेतत्

श्रीसूरदासमदनादिकमोहनश्च, श्रीचन्द्रशेखर-हलायुध-विष्णुदासा: ।
वंशीमुखश्च मधु-राघवपण्डितौ च, श्रीवासुदेव-निधिलोचनठक्कुराश्च ।।६७।।

विद्युन्माला-वृत्तमेतत्

गोपीनाथाचार्यो ब्रह्मानन्द: श्रीमत्काशीमिश्र: ।
गंगादास: श्रीमद्रामानन्द: श्रीमद्वाणीनाथ: ।।६८।।

इत: श्लोकद्वये इन्द्रवज्रा-वृत्तम्

आचार्यरत्न: प्रभुवासुदेवाचार्यस्तथा श्रीपतिलोकनाथौ ।
चैतन्यभक्ता: खलु भक्तमालाकारैरनुक्ता अपि ते मयोक्ता: ।।६९।।
चैतन्य भक्ता अपि भक्तमाला-,मध्ये निरुक्ताश्च पृथक्तया ये ।
एकत्र संयोज्य मया निरुक्ता-,स्ते चाऽपि सम्यक् परिशीलनाय ।।७०।।

इत: पज्झटिका-वृत्तत्रयम्

सूरदास-श्रीकेशवभट्टौ, परमानन्ददास-श्रीभट्टौ ।
श्रीहरिव्यास-दिवाकरनाथौ, त्रिपुरदास-श्रीविट्ठलनाथौ ।।७१।।
गिरिधर-गोविन्द-गोकुलनाथा, बालकृष्ण-रघुनाथ-यदुनाथा: ।
श्रीघनश्याम-कृष्णदासौ च, गंगल-वर्धमानभक्तौ च ।।७२।।
भीष्मभट्ट-कमलाकरभट्टौ, विट्ठलदास-नारायणभट्टौ ।
हरिरामहठी क्षेमगोस्वामी, वल्लभश्च हरिवंशस्वामी ।।७३।।

वसन्ततिलका-वृत्तमेतम्

श्रीआशुधीरतनयो हरिदासवर्य:,
श्रीव्यासकोऽलिभगवान् मधुगोपतिश्च ।

श्रीविट्ठलादिविपुलश्च घमण्डिरङ्गौ,
श्रीकृष्णदास-बुधवर्णिवरौ[1] च सोझाः ।।७४।।

इतः पज्झटिका-पञ्चकम्

जगन्नाथथानेश्वरवर्यः, सीवाँ युगलकिशोरो वर्यः ।
आधारो हरिनाम-सुवर्यः, आशाधरस्त्रिलोचनवर्यः ।।७५।।
हृषीकेश-द्यौराजनि-वर्यौ, श्रीसदना-काशीश्वरवर्यौ ।
कृष्णकिङ्करः कटहरियाजिः, सोभूराम उदारामाजिः ।।७६।।
पद्मो डूँगर-पदारथौ च, रामदास-विमलानन्दौ च ।
रामरावलः श्यामः खोजिः, श्रीसोहा दलहा पद्माजिः ।।७७।।
मनोरथो राँका वाँकाजिः, द्यौगुर्जडागुरुचाचाजिः ।
श्रीलसवाई चाँदानीपाः, श्रीपुरुषोत्तम-चतुरौ कीताः ।।७८।।
लक्ष्मण-लड्डू त्यागी लफराः, सूरज-कुम्भनदासौ नफराः ।
खेमविरागि-विमानि-भावनाः, विरहिभरत-हरिकेश-पावनाः ।।७९।।

वसन्ततिलका-वृत्तमेतत्—

श्रीचक्रपाणि-हरिदास-तिलोकवर्या,
विज्जुस्तथा पुरखदीरपि सोमनाथः ।
सोमस्तथा वनचराऽन्वयजोद्धवश्च,
श्रीभीम-विक्क-लमध्यानवरा विशाखाः ।।८०।।

इतः श्लोकत्रये अनुष्टुब्-वृत्तम्

महदाश्च मुकुन्दश्च गणेशश्च त्रिविक्रमः ।
वाल्मीकिश्च रघुश्चैव जननो वृद्धव्यासकः ।।८१।।
झाँझूश्च विट्ठलाचार्यो हरिभूर्हरिदासकः ।
लाला बाहुबलो लाखा राघवाचार्य-छीतरौ ।।८२।।
उद्धवश्च कपूरश्च घाटमो घूरिरेव च ।
देवानन्द-मुकुन्दौ च नृहर्यानन्द एव च ।।८३।।

वसन्ततिलका-वृत्तमेतत्

श्रीरङ्ग-छीतम-महीपति-सन्तरामाः
श्रीनन्द-विष्णु-बजु-माधव-खेमरामाः ।
दामोदरो नृहरि-मण्डन-वींद-रूपाः,
श्रीद्वारिकाशरणको[2] भगवाँश्च बालः ।।८४।।

१—पं० कृष्णदासजी, ब्रह्मचारी कृष्णदासजी । २—द्वारिकादासः ।

इन्द्रवज्रा-वृत्तमेतत्

श्रीकान्हरः केशवकेशवौ च, लोहंग-नानू च प्रयागदासः ।
गोपाल-खेता-हरिनाथ-भीमा, गोविन्दवर्णी किल बालकृष्णः ॥८५॥

पज्झटिका-वृत्तम्

बडभरतोऽच्युत-मुकुन्दलालौ, गुणनिधिरपया-जसगोपालौ ।
विद्यापति-गोपीनाथौ[1] च, ब्रह्मदासजि-वहोरनकौ च ॥८६॥

इतः श्लोकद्वये अनुष्टुब्-वृत्तम्

रामलालो विहारी च गोविन्दस्वामिकस्ततः ।
भक्तभाई-प्रियदया-लौ गंगारामकस्ततः ॥८७॥
श्रीमत्परशुरामश्च खाटीकः केशवस्तथा ।
आशाकरण-पूरण-भीष्मा जनदयालकः ॥८८॥

इतः पज्झटिका-वृत्तद्वयम्

दासूस्वामी श्रीरघुनाथः, गुञ्जामाली गोपीनाथः ।
रामभद्र-वीठलभक्तौ च, चितउत्तम-मरहठ-भक्तौ च ॥८९॥
गोविन्द-यदुनन्दन-रघुनाथाः, भगवत्केशव-मुकुन्दनाथाः ।
मुरलीश्रोत्रिय-रामानन्दौ, श्रीहरिदासमिश्रजि-मुकुन्दौ ॥९०॥

इतः श्लोकद्वये उपजातिः

चरित्रभक्तश्च चतुर्भुजश्च, श्रीविष्णुदासोऽपि च वेनिभक्तः ।
झाली च सीता सुमतिश्च शोभा, उमा च गंगा प्रभुता कुमारी ॥९१॥
गोपाल्युवीठा च गणेशदेवी, कला लखा चैव कृतङ्गढौजी ।
श्रीसत्यभामा यमुना च कोली, रामा मृगा मानवती च देवा ॥९२॥

इन्द्रवज्रा-वृत्तम्

कीकी च जेवाद्वयमेव हीरा, श्रीदेवकी श्रीकमला च गौरी ।
जापूस्तथा श्रीहरिचेरिका च, धारा च रूपा नरवाहनश्च ॥९३॥

पज्झटिका वृत्तमेतत्—

मधुकरशाह-वाहनवरीशौ, जयमल-विन्दावतकावीशौ[2] ।
गम्भीरार्जुनकश्च जयन्तः, श्रीगोविन्द उदारावन्तः ॥९४॥

१—श्रीगोपीनाथपण्डा । २—समर्थावित्यर्थः ।

उपजातिरेषा—

जनार्दनश्चाऽनुभवी च जीता, दामोदरः सांपिलको गदाश्च ।
श्रीईश्वरो हेमविदीतकश्च, श्रीमन्मयानन्द-गुढीलकौ च ॥९५॥

इतः श्लोकचतुष्टये पज्झटिका-वृत्तम्

मोहनवारी-तुलसीदासौ, वनियाँराम-गाँवरीदासौ ।
दाऊराम-जगदीशदासौ, श्रीमल्लक्ष्मण-भगवद्दासौ ॥९६॥
श्रीगोपालो लाखाभक्तः, गोपालश्च जावनेरस्थः ।
नरसीभक्त-श्रीदिवदासौ, श्रीलयशोधर-नन्दसुदासौ ॥९७॥
खिन्नदास उ चतुर्भुजदास-,श्चेतस्वामी माधवदासः ।
चतुर्भुजोंऽगद-जनगोपालौ, मीरा पृथ्वीराड्-जयमालौ ॥९८॥
लघुजन-रामचन्द्र-नीवांश्च, अभयराम-भगवद्विरमाश्च ।
रायमलोऽक्षयराज ईश्वरः, मधुकरशाहः श्रीलकान्हरः ॥९९॥

उपजाति-वृत्तमेतत्—

खेमालरत्नश्च किशोरसिंहः, स्वधर्मपत्नीयुत-रामरेनः ।
चतुर्भुज-श्रीहरिदास-सन्त-,दासास्तथा चालककृष्णदासः ॥१००॥

इन्द्रवज्रा-वृत्तमेतत्—

कात्यायनी चैत्र मुरारिदासो, गोस्वामि-पूर्वस्तुलसीसुदासः ।
श्रीमानदासो गिरिधारिलालो, गोस्वामि-श्रीगोकुलनाथवर्यः ॥१०१॥

इतः श्लोकपञ्चके शार्दूलविक्रीडितवृत्तम्

चौड़ा-चौमुख-चंड-कोल्ह-करमानन्दाऽल्हका माधवः
श्रीसाधुर्वनमालिदास-दुदुकौ चौरासिको माण्डनः ।
श्रीनारायणमिश्र-वावनक-जीवानन्द-सीवास्तथा
सीवां-राघवदासकौ परशुरामो दासनारायणः ॥१०२॥
पृथ्वीराजजि-प्रेमसिंह-जुजुवाः कल्याणसिंहस्तथा
श्रीमन्माधवसिंह-वोहिथवरौ राज्ञी च रत्नावती ।
श्रीनारायणदास-नर्तकमणिः श्रीरामदासस्तथा
गोविन्दश्च हि वर्धमान उ जगन्नाथादिपारीषकः ॥१०३॥
छीतस्वामि-गदाधरौ च मथुरादासस्तथा मांडिलः
श्रीगोसू-यशवन्त-कन्हरवराः श्रीरामगोपालकः ।
श्रीश्यामश्च कुमारवर्य-हरिनाभामिश्रकौ नारदो
दीनादासक-वत्सपालकवरौ श्रीरामदासस्तथा ॥१०४॥

श्रीगंगा भगवज्जनावलमनन्तानन्दकश्चोद्धवो
विश्रामश्च हि कृष्णजीवनवरो नारायणान्तो हरिः।
कुंडा-किंकर-ब्रह्मदास-परसा रामा विहारी तथा
श्रीखेमाच्युतरामरेणु-जयदेव-श्यामदासास्तथा ॥१०५॥
गोपानन्द-दयाल-राघववरा दामोदरो मोहनः
श्रीसोठा-बिदुरोद्धवाश्च परमानन्दः प्रधानस्तथा।
श्रीखोरा-चतुरीनगान-रघुनाथाः कृष्णदासस्तथा
श्रीखेमा[1] भगवद्द्वयी[2] च परमानन्दश्च गोमोद्भवः[3]॥१०६॥

वसन्ततिलका-वृत्तमेतम्

श्रीश्यामदास-जयतारण-विट्ठलाश्च, गोपाल-चीधडजि-केवलदास-पीपाः।
जंगी च पूरण-विनोदि-प्रयागदासाः, श्रीमद्दिवाकरवरो वनमालिदासः॥१०७

इतः पज्झटिकावृत्तं श्लोकसप्तके

नृसिंहदासो भगवद्दासः, किशोरदासश्च जगतदासः।
सल्लूधो जगन्नाथदासः, श्रीखांचीः श्रीखेमादासः॥१०८॥
टीला लघूद्धवो धर्मदासः, श्रीलीहाः परमानन्ददासः।
खेमदासकः खरतरदासः, श्रीध्यानदासः, केशवदासः॥१०९॥
श्रीमत्योलाः श्रीहरिदासः, श्रीवीठलसुत-कान्हरदासः।
नीवास्तूवा भगवद्दासः, जसवन्तो भीमो हरिदासः॥११०॥
विष्णुदासको गोपालश्च, आशकरणराजर्षिवरश्च।
रूपदासको भगवद्दास-,श्चतुरदासकश्छीतरदासः॥१११॥
रसिकरायमल-देवादासौ, गौरदासजि-रायमलदासौ।
लाखै-दामोदरभक्तौ च, गोपालदास-नाथभट्टौच॥११२॥
तूँवरदास-गंगग्वालौ च, परशुरामजा करमेती च।
शेषावतिराडपि तत्रस्थः[4], श्रीमत्खड्गसेनकायस्थः॥११३॥
सोती-प्रेमनिधी लालदासः, माधवग्वालः प्रयागदासः।
पदुमा राघवदासदुर्बलः, हरिनारायण ऊधा अटलः॥११४॥

इतः श्लोकद्वये शार्दूलविक्रीडितम्

देमा-खीचनि-पूनिराश्च तुलसीदासश्च हीरामणिः
वीरा रामसुदाकश्च परमानन्दश्च रैदासिनी।

१—खेमा पण्डा। २—कालखेके, सांगरेनके। ३—गोमावाले।
४—यत्र करमेती उत्पन्ना तत्रस्थ इत्यर्थः।

श्रीरामाऽपि च गौमती च यमुना श्रीदेवकल्याणको
वीरां पर्वतजाद्वयी[1] किल धना लालो च लक्ष्मीस्तथा ।।११५।।
श्रीजेवा हरिषा तथा जयसिनी गंगा च केशी तथा
श्रीमत्कान्हरदास-केशवलटेरौ वादरानी तथा ।
कल्याणो हरिवंशकः कुमरिरायो भीमसिंहस्तथा
रङ्गः केवलराम आसकरनः श्रीधर्मदासस्तथा ।।११६।।
लाखै-वीठलदासकौ परशुरामः श्रीसदानन्दकः
कल्याणोऽपि च श्यामदास-हरिदासौ वंशनारायणः ।
श्रीमच्छङ्कर-कृष्णदास-जगदेवा ग्वालगोपालकः
श्रीदामोदरतीर्थकः खडगुकः श्रीचित्सुखानन्दकः ।।११७।।

अनुष्टुब्-वृत्तमेतम्

माधवानन्दकः श्रील-मधुसूदन-सरस्वती ।
नृसिंहारण्यकश्चैव रामभद्रसरस्वती ।।११८।।

इतः पज्झटिकात्रयम्

जगदानन्द-द्वारिकादासौ, लक्ष्मणभट्ट-गदाधरदासौ ।
पयोव्रतः श्रीयुतकृष्णदासः, पूर्णः श्रीनारायणदासः ।।११९।।
कल्याणसिंहो भगवद्दासः, सन्तदासको माधवदासः ।
आनन्दसिंहः कान्हरदासः, जगतसिंहको गोविन्ददासः ।।१२०।।
दीपकुमारी वासोदेवी, जयसिंहो गोपाली देवी ।
गिरिधरग्वाल-रामदासौ च, रामराय-श्रीभगवन्तौ च ।।१२१।।

उपजाति-वृत्तमेतत्

श्रीरामदासश्च विलासदासः, किशोरदासस्त्रय एव चैते ।
व्यासात्मजा लालमती च भक्ता, पीपाश्रितो भूपतिसूर्यसेनः ।।१२२।।

शार्दूलविक्रीडितमेतत्

इत्येषा गदिता मयाऽघदमनी श्रीभक्तनामावली
यां श्रुत्वा मुदितो भवत्यतितरां श्रीकृष्णचन्द्रः स्वयम् ।
तस्माद् येऽभिलषन्ति लब्धुमचिरात् पादाम्बुजं श्रीहरे-
स्ते नित्यं प्रपठन्तु प्रीतिसहिता उद्दिश्य प्रीतिं हरेः ।।१२३।।

---

[1]—दोनों पार्वती ।

शिखरिणी वृत्तमेतत्—

हरेर्भक्ता ये सन्त्यपि च भवितारः समभवन्
समस्ताँस्तान्नत्वा लघुमतिरहं प्रार्थय इदम् ।
अये भक्ता ! यूयं कुरुत रतिहीने मयि कृपाम्
ममाऽक्ष्णोः पन्थानं हरिरटतु रामेण सहितः ॥१२४॥

स्रग्धरा-वृत्तमेतत्

यस्याः पाठस्य मुख्यं फलमपि गदितं श्रीहरिप्राप्तिरेव
या दातुं तं समर्था परमपि पुरुषं भोग्यमन्यत्तु किन्नो ।
तस्माद् भावानुसारं सकलजनमनोदोहदं पूरयन्ती
सा नित्यं प्रादुरास्तां मम रसनतरौ चिन्मयी कल्पवल्ली ॥१२५॥

एतां मालां श्रीहरिगले समर्पयति पञ्चचामर-वृत्तेन—

विचित्रवृत्त-गुच्छकैर्विचित्रभाव-गन्धकै-
र्विचित्रनाम-पुष्पकैर्विचित्रभक्ति-सूत्रकैः ।
हरे ! मुदा विनिर्मिता समर्पिता गले च ते
मुदं तनोतु भक्तनाममालिकेयमाशु ते ॥१२६॥

अधुना ग्रन्थसमाप्तिकालमभिधत्ते तूणक-वृत्तेन—

पक्ष-शून्य-शून्य-पक्षकैर्मिते तु वत्सरे
विक्रमार्क-भूपतेश्च मार्गशीर्ष-मासके ।
शुक्लपक्ष-पञ्चमीतिथावियं समापिता
सूर्यजा-तटी-कुटीर-वासिना तु केनचित् ॥१२७॥

अधुना स्वकृतज्ञताप्रकाशनाय यस्य दयया भक्तिभागभवं स इमां मम कृतिं दृष्ट्वा प्रसन्नो भवतु जीयाच्चेत्याह सनामनिर्देशं आर्यावृत्तद्वयेन—

यस्य दयालवबलतो, बलहरिपदयोर्ममाऽनुरागोऽभूत् ।
स कृतिमिमां मम दृष्ट्वा, तुष्टः प्रेष्ठो हरेर्भूयात् ॥१२८॥
श्रीलरामहरिदास, इत्यपराख्याऽपि यस्य विख्याता ।
शिक्षानिदेशिको मे, यः शास्त्रज्ञः स संजीयात् ॥१२९॥

श्रीभक्तनाम-मालिकायाः पाठस्य महत्त्वम्—

श्रीभक्तनामस्रगियं मनुजैः स्वकण्ठे
यैर्धास्यते प्रतिदिनं हरिसंनिधाने ।
भुक्त्वा हरेः करुणया भुवि सर्वसौख्यं
संप्राप्स्यते सुखतया हरिसंनिधिस्तैः ॥१३०॥

भावुक-पाठकेभ्यः प्रार्थना—

श्रीकृष्णानन्ददासाऽनुचर-विरचिता मालिकेयं समाप्ता
भक्तानां सौख्यदात्री प्रतिपदममल-प्रेमपीयूष-पात्री ।
दृष्ट्वेमां भक्तवृन्दाऽऽह्वय-कथनपरां भावुका ! भावसिन्धौ
स्नात्वा पूर्वं ततो मां स्नपयत कृपया बालकं मात्रिकेव ।।१३१।।

इति श्रीनिखिलशास्त्रपारावार-पारदृश्व-सख्यावताराष्टोत्तरशत-स्वामि-श्रीकृष्णानन्ददासजी-महाराज-शिष्येण काव्य-वेदान्ततीर्थेन घटिकाशतकेन महाकविना श्रीवनमालिदासशास्त्रिणा गुम्फिता "भक्त-सहस्रनाम" इत्युपनाम्नी श्रीभक्तनाम-मालिका सम्पूर्णा ।

★

ग्रन्थकारगुरोः प्रशस्तिः

[लेखक—श्रीकृष्णचैतन्यदासजी]

भ्रामं भ्राममलं बहिर्मुखजनग्रामान् कृतानुग्रहं
ग्राहं ग्राहमनर्गलं कलिमहामन्त्रं जनान् ग्राहयन् ।
श्रीकृष्णप्रवणीकृतः किल बहूञ्जीवानिहाजीवनं
कृष्णानन्दमहात्मपण्डितमहाराजः स मे जीवनम् ।।१।।
आर्येत्याख्यकलङ्ककारिपुरुषव्रातैरसद्वादिभिः
सत्रा शास्त्रविचारणेऽर्जितजयो जल्पादिभी रीतिभिः ।
सिद्धान्तं हरिभक्तिसाधकतमं सर्वत्र संस्थापयन्
कृष्णानंदमहात्मपण्डितमहाराजः स मे जीवनम् ।।२।।
यः श्रीभक्तिरसामृताम्बुधिकणास्वादेन जातोन्मनाः
क्षारं नीरमिवाऽजहादपि धृतं संन्यासलिङ्गं पुरा ।
पश्चाच्छ्रीलमहाप्रभोः प्रकटितां भक्तिध्वजां धूनयन्
कृष्णानन्दमहात्मपण्डितमहाराजः स मे जीवनम् ।।३।।
यः सख्यात्मकभावमेव परमं गोष्ठे हि दास्यं नव-
द्वीपे श्रीलमहाप्रभोश्च समुपाश्रित्याऽभजच्छ्रीहरिम् ।
शिष्यस्तोममशिक्षयच्च निजवद् भक्तिं हरेस्तादृशीं
कृष्णानन्दमहात्मपण्डितमहाराजः स मे जीवनम् ।।४।।

श्रीगुरुदेवस्मरणाष्टकम्

निर्माणकालः वि० सं० २००० मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष

बुडालाख्ये ग्रामे जनिरपि यदीया समभवत्
यदीयो भोलाराम इति विदितोऽभूद्धि जनकः ।
स्वयं यः सौन्दर्याञ्चित-तनुरभूद् भूसुरवरः
स आचार्यः किं मे नयनपदवीं यास्यति पुनः ॥१॥

ततो यातो हित्वा गृहमपि हि यः षोडशसमो
मुदा काशीं तत्राऽप्यलमपठदल्पैरपि दिनैः ।
विपश्चिद्वर्याच्छास्त्रमलघु तिवाडीति विदितात्
स आचार्यः किं मे नयनपदवीं यास्यति पुनः ॥२॥

गजानन्दैर्नीतः पुनरपि च संन्यासिसरणिम्
ततो दातुं सर्वे मठपतिपदं यस्य च कृते ।
बभूवुः संसक्तास्तदपि नहि यस्तत्समनयत्
स आचार्यः किं मे नयनपदवीं यास्यति पुनः ॥३॥

ततो यातो हित्वा मठपतिपदं यो विषमिव
मुदा वृन्दारण्यं हरिजनशरण्यं शुभकरम् ।
अभूद् यस्तत्राऽपि प्रभुजनप्रसङ्गात् प्रभुजनः
स आचार्यः किं मे नयनपदवीं यास्यति पुनः ॥४॥

भुवि भ्रामं भ्रामं श्रुतिशरचयैर्नास्तिकमृगाः
कृताः पापारण्यान्नरकभयदाद् धर्मवनगाः ।
न यत्राऽऽस्ते भीतिः शमनमृगयु-त्यक्तशरजा
स आचार्यः किं मे नयनपदवीं यास्यति पुनः ॥५॥

विलुप्तप्राया सख्यरस-परिपाटी प्रकटिता
तथा तद्रक्षार्थं सखिरसपरो येन रचितः ।
बृहद्ग्रन्थो यस्य प्रणिगदति कीर्तिञ्च विमलाम्
स आचार्यः किं मे नयनपदवीं यास्यति पुनः ॥६॥

श्रुतीनां पत्री नास्तिकमदविनाशाय लिखिता
तथा भक्तिग्रन्थेष्वपि बहुषु टीका विलिखिताः ।
तथा येन श्रीभागवत-सुविमर्शो विरचितः
स आचार्यः किं मे नयनपदवीं यास्तति पुनः ॥७॥

सदा स्वादं स्वादं बलहरिकथाकीर्तनरसम्
प्रियैर्भक्तैः रात्रिन्दिवमपि च यो नैव बुबुधे ।
तथा वै यस्याऽजागरुरखिलशास्त्राणि हृदये
स आचार्यः किं मे नयनपदवीं यास्यति पुनः ॥८॥

गुरूणामस्माकं प्रथितयशसामष्टकमिदम्
शरीरी यो नित्यं पठति मुदितो भावसहितः ।
गुरौ तस्य प्रीतिर्भवति विमला भावविपुला
तथा श्रीमद्रामानुजबलकृपाभाजनमपि ॥९॥

त्रिभिः शून्यैर्द्वाभ्यां खलु परिमिते विक्रमसमे
शुभे मार्गे मासे सितदलवरे चाष्टकमिदम् ।
तथा वृन्दारण्ये तररिदुहितू रोधसि वस-
न्नकार्षीदार्तात्मा भुवि हि वनमालीति विदितः ॥१०॥

इति श्रीवनमालिदासशास्त्रि-विरचितं पूज्यपाद-श्रीलश्री १०८ स्वामिश्रीकृष्णानन्ददासजीमहाराज-स्मरणाष्टकं सम्पूर्णम् । कृतेनाऽनेन श्रीगुरुदेवः प्रसन्नो भवतु ।

★

प्रातः स्मरणस्तोत्रम्

निर्माण काल—वि० सं० २००४ पौष शुक्ल द्वितीया प्रातः

प्रातः स्मरामि बलकृष्णपदारविन्दं, वज्रांऽकुशध्वजसरोरुहलाञ्छनाढ्यम् ।
उत्तुङ्गरक्तविलसन्नखचक्रवाल-,ज्योत्स्नाभिराहतमहद्हृदयान्धकारम् ॥१॥

प्रातः स्मरामि बलकृष्णकरारविन्दं, नेत्राञ्जनाङ्कलगनादिव रूढभृङ्गम् ।
मित्रैः सुदाम-वसुदाम-मुखैरूदूढं, प्रातः प्रबोधपरया च यशोदयाऽपि ॥२॥

प्रातः स्मरामि बलकृष्णमुखारविन्दं, सच्चित्तमानस-सरोवर-रूढमूलम् ।
सेव्यः सदाऽस्य मकरन्द उदात्तभृङ्गैः,सच्छास्त्रकाननविसारिसुगन्धपुञ्जम् ॥३॥

प्रातः स्मरामि बलकृष्णसुनामधेयं, ध्येयं सदैव हृदयेऽपि परावरैश्च ।
मुक्तिं ददानमपि हेलनया गृहीतं, यच्चेतिहासनिगमागमगीतकीर्ति ॥४॥

प्रातः स्मरन्ति भुवि पद्यचतुष्कमेतद्, ये मानवाः स्मरति तानपि रामकृष्णः ।
वृन्दाटवीवसतिलब्धकवित्वशक्ति-,रित्याह तत्सहचरो वनमालिदासः ॥५॥

श्रीवृन्दावनाष्टकम्

निर्माणकालः—वि० सं० २००४

श्रीकृष्णवेणुरवफुल्ललतावितान !, गुञ्जन्मधुव्रत-पिकालि-परीतकुञ्ज !
सौरीसरोरुहसमर्षितवातगन्ध !, वृन्दावन ! प्रशमयाशु मनोरुजं मे ॥१॥
निःश्रेयसाख्यवनतोऽपि विकुण्ठपूःस्थात्, शोभां सहस्रगुणितां दधदप्रमेय ! ।
यद्रामकृष्णचरणाङ्कसमर्चिताङ्ग !, वृन्दावन ! प्रशमयाऽऽशुमनोरुजं मे ॥२॥
अश्रान्तपुष्पितलताव्रजपुष्पपुञ्ज-,विस्तारिसौरभ-चमत्कृत-चंचलाक ! ।
वैकुण्ठनाथपरिकीर्तितकीर्तिमाल !, वृन्दावन ! प्रशमयाशु मनोरुजं मे ॥३॥
गोविन्दवेणुकलगीतरसज्ञलोक !, श्यामाङ्ग-दर्शनटद्‌बहुनीलकण्ठ ! ।
हे मर्त्यलोकसुभगत्वप्रसिद्धकेतो !, वृन्दावन ! प्रशमयाशु मनोरुजं मे ॥४॥
श्रीराधिकारसविवर्धकरासलीला-,तौर्यत्रिकोत्पुलकिताङ्गरुहैर्मनोज्ञ ! ।
सर्वज्ञकृष्णनटलास्यप्रयोगसाक्षिन् !, वृन्दावन ! प्रशमयाशु मनोरुजं मे ॥५॥
गोवर्धनो विजयते हरिदासवर्यः, सूर्यात्मजा च सुषमामधिकीकरोति ।
यत्राऽच्युतोऽपि विजहार सखिव्रजेन, वृन्दावन ! प्रशयमाशु मनोरुजं मे ॥६॥
सर्वत्र नष्टविभवा हरिभक्तिरत्र-,नृत्यं करोति किल वैष्णवमानसेषु ।
दिव्याङ्ग ! दिव्यपशुपक्षिलतादिलोक !, वृन्दावन! प्रशमयाशु मनोरुजं मे ॥७॥
यत्त्यक्तुमिच्छति हरिर्न मनागपि त्वां, यत्रोद्धवो विधिरपीच्छति जन्म तार्णम् ।
कस्ते वनाधिप ! गुणान्कथयत्वतो विद्, वृन्दावन ! प्रशमयाशु मनोरुजं मे ॥८॥
वृन्दावनाष्टकमिदं स्थितधीर्मनुष्यः, श्रद्धाऽन्वितोऽनुशृणुयादथकीर्तयेद् यः ।
वृन्दावनस्य कृपया भुवि लब्धभोगो, भूत्वा हरिप्रणयभाजनमस्तु चान्ते ॥९॥
वेदाभ्रशून्यनयनैश्च मिते हि वर्षे, श्रीविक्रमार्कवसुधाधिपतेरकार्षीत् ।
वृन्दाटवीवसतिलब्धकबित्वशक्ति-,वृन्दावनाष्टकमिदं वनमालिदासः ॥१०॥

इति श्रीवृन्दावनाष्टकं सम्पूर्णम् ।

श्रीगोवर्धनाष्टकम्

निर्माणकालः—वि० सं० २००४

श्रीकृष्णचन्द्रभुजदण्डवरे विराजन्, सप्ताहमिन्द्रकृतवर्षभयाद् व्रजस्य ।
रक्षां विधाय दलितेन्द्रकृताभिमान !, गोवर्धनाऽऽशु कुरु पूर्णमनोरथं माम् ॥१
आविर्भवन् प्रकटरूपतया हरिस्त्वां, प्राभक्षयत् सुबहुगोपकुलार्पितान्नम् ।
तुष्टस्त्वमाशु वरहर्षितगोपलोक !, गोवर्धनाऽऽशु कुरु पूर्णमनोरथं माम् ॥२॥
पापक्षयाय धृतमानसजाह्नवीक !, फुल्लद्रसालकुलकोकिलकाकलीक ! ।
राधासरः प्रभृतिदीर्घजलाशयाढ्य !, गोवर्धनाऽऽशु कुरु पूर्णमनोरथं माम् ॥३॥

कूजद्विहङ्गमकदम्बकदम्बशोभ !, नृत्यन्मयूरकुलशोभितदीर्घशृङ्ग ! ।
नीलाम्बुदाभहरिगात्रसमानगात्र !, गोवर्धनाऽऽशु कुरु पूर्णमनोरथं माम् ॥४॥
दर्पं हरेर्दलयता हरिणा बलेन, नन्दादिगोपनिवहैः सह पूजिताङ्ग ! ।
अद्यापि पूज्यपद ! कार्तिकपक्षतौ हे, गोवर्धनाऽऽशु कुरु पूर्णमनोरथं माम् ॥५॥
कुञ्जैश्च गुञ्जदलिपुञ्जसुमञ्जुपुष्पैः, कृष्णस्य खेलनसुखैः ससखिव्रजस्य ।
शोभाढयगह्वरकुलैश्च परीतदेह !, गोवर्धनाऽऽशु कुरु पूर्णमनोरथं माम् ॥६॥
छत्रीभवन् हरिकरोपरि स्वं यथार्थम्, नामाऽकरोस्त्वमपि गोकुलवर्धनाद् वा ।
धातुव्रजैरपि च दीपितसानुभाग !, गोवर्धनाऽऽशु कुरु पूर्णमनोरथं माम् ॥७॥
यः पूजितो विधिगिरीशमहेन्द्रमुख्यै-,र्देवैश्च तेन हरिणा परिपूजिताङ्घ्रे ! ।
कस्तेऽद्रिराज ! महिमानमतो ब्रवीतु, गोवर्धनाऽऽशु कुरु पूर्णमनोरथं माम् ॥८॥
गोवर्धनाष्टकमिदं कृतधीर्मनुष्यः, श्रद्धान्वितोऽनुशृणुयादथ वर्णयेद् यः ।
गोवर्धनस्य कृपया भुवि लब्धभोगो, भूत्वा हरिप्रणयभाजनमस्तु चान्ते ॥९॥
वेदाभ्रशून्यनयनैश्च मिते हि वर्षे, श्रीविक्रमार्कवसुधाधिपतेरकार्षीत् ।
वृन्दाटवीवसतिलब्धकवित्वशक्ति-,र्गोवर्धनाष्टकमिदं वनमालिदासः ॥१०॥

इति श्रीगोवर्धनाष्टकं सम्पूर्णम् ।

श्रीरामभद्रदशकम्

निर्माणकालः वि० सं० २००७ भाद्रपद

भूमेरभद्रमवतारयितुं शिवाद्यै-,रभ्यर्थितः सुरगणैर्भगवन् ! सदैन्यम् ।
स्वीकृत्य तत्सुवचनं तदपाकरोस्त्वं, हा रामभद्र ! किमभद्रमपैति नो मे ॥१॥

हे भगवन् ! रामभद्र ! त्रेतायुग में भूमि का भार उतारने के लिये शिवप्रभृति देवताओं ने आप से दीनतापूर्वक प्रार्थना की थी, आपने उनके सुन्दर वचनों को अंगीकार करके उस समय भूमी का भार उतार दिया था, किन्तु हा प्रभो ! मेरा अभद्र (अमङ्गल) क्यों दूर नहीं हो रहा है ? ॥१॥

कौशल्यया दशरथेन पुरा भृशं वै, संप्रार्थितः स्वकमभद्रमपाकरीतुम् ।
भूत्वा तयोः सुतनयस्तदपाकरोस्त्वं, हा रामभद्र ! किमभद्रमपैति नो मे ॥२॥

देखो प्रभो ! कौशल्या एवं दशरथजी ने अपने निःसन्तानतारूप अभद्र उतारने के लिये पहले आप से भारी प्रार्थना की थी, आपने उन दोनों के सुपुत्ररूप में अवतीर्ण होकर उनका वह अभद्र दूर कर दिया था, किन्तु हा रामभद्र ! मेरा अभद्र (अकल्याण) क्यों दूर नहीं होता प्रभो ? ॥२॥

मारीचरूपमधिकं स्वमभद्रजातं, दूरं विधातुमृषिणा भृशमर्थितो वै ।
रक्षन् सवं लघु ऋषेस्तदपाकरोस्त्वं, हा रामभद्र ! किमभद्रमपैति नो मे ॥३॥

ऋषिवर्य विश्वामित्र ने अपने यज्ञ के विघातक मारीच राक्षसरूप विशिष्ट अमङ्गल को दूर करने के लिये आपसे भारी प्रार्थना की थी, आपने उनके यज्ञ की रक्षा करते हुए उनके उस अमङ्गल को दूर भगा दिया था, किन्तु हा प्रभो ! रामभद्र ! मेरा अमङ्गल आज भी क्यों दूर नहीं हो रहा है ? ॥३॥

शैली वने निपतिता विजनेऽप्यहल्या, तस्यास्त्वभद्रमिह गौतमशापरूपम् ।
मार्गे व्रजन् करुणया तदपाकरोस्त्वं, हा रामभद्र ! किमभद्रमपैति नो मे ॥४॥

अहल्या माता विजनवन में शिलारूप बनकर पड़ी हुई थी, इस संसार में उनका तो श्रीगौतमजी का शाप ही अभद्र था, उसको आपने अपनी अहैतुकी करुणा के द्वारा जनकपुरी के मार्ग में चलते चलते अनायास दूर कर दिया, किन्तु हा प्रभो ! रामभद्र ! मेरा अभद्र आज भी क्यों दूर नहीं हो रहा है ? ॥४॥

सीताविवाहसमये समभद्ररूपं, शैवं धनुः स्वहृदये मिथिलाधिराजः ।
मत्वाऽऽस शोकविकलस्तदपाकरोस्त्वं, हा रामभद्र! किमभद्रमपैति नो मे ॥५॥

जगज्जननी जानकी के विवाह के समय मिथिलाधिपति जनकजी अपने हृदय में शिवजी के धनुष को ही विशिष्ट अभद्र मानकर तथा शोक-विकल होकर किं कर्तव्य विमूढ़ होकर बैठे थे; आपने इक्षुदण्ड के समान शिव कोदण्ड के खण्ड बनाकर जनकजी का अभद्र दूर कर दिया था, किन्तु हा प्रभो ! रामभद्र ! मेरा अभद्र (अशुभ) अब भी क्यों दूर नहीं हो रहा है ? ॥५॥

कैकेयिका-कुवररूपमभद्रजातं, ज्ञात्वा पितुर्दशरथस्य सहर्षमाशु ।
संपाल्य पैत्रवचनं तदपाकरोस्त्वं, हा रामभद्र ! किमभद्रमपैति नो मे ॥६॥

पिता दशरथजी का तो कैकेयी का कुत्सित वर-रूप ही अमङ्गल था, यह समझ कर आपने पिता के वचनों का सहर्ष शीघ्र ही पालन कर उस अमङ्गल को दूर भगा दिया, किन्तु हा प्रभो ! रामभद्र ! मेरा अभद्र आज भी दूर क्यों नहीं हो रहा है ? ॥६॥

मैत्रीं विधाय ननु सूर्यसुतेन साकं, तस्याप्यभद्रमिह पूर्वजबन्धुरूपम् ।
हत्वाऽपि वालिनमरं तदपाकरोस्त्वं, हा रामभद्र ! किमभद्रमपैति नो मे ॥७॥

संसार में सुग्रीव का अभद्र तो उसका बड़ा भाई वाली ही बनकर बैठा था, आपने सुग्रीव के साथ मित्रता करके वाली को शीघ्र ही मारकर उसके अभद्र को दूर कर दिया था, किन्तु हा प्रभो ! रामभद्र ! मेरा अभद्र आज भी क्यों दूर नहीं हो रहा है ? ॥७॥

मैत्रीं विभीषण उपागत आशु कर्तुं, तस्याप्यभद्रमभवद् कपिवाक्यरूपम् ।
मैत्रीं विधाय सहसा तदपाकरोस्त्वं, हा रामभद्र ! किमभद्रमपैति नो मे ।।८।।

विभीषणजी आप से तत्काल मित्रता करने को जब आये थे उस समय बानरों के निषेधरूप वाक्य ही उनके अभद्र रूप बन गये थे, किन्तु आप ने तो उनसे सहसा मित्रता करके उनके अभद्र को दूर कर दिया था, तथापि हा रामभद्र ! मैं भी तो आपका मित्र ही हूँ किन्तु मेरा अभद्र क्यों दूर नहीं होता सखे ! "निर्दोषो वा सदोषो वा वयस्यः परमागतिः" इस निजी वचन को याद करके दूर कर दीजिये सखे ! ।।८।।

वर्षं तु ते विरहदं जनकात्मजाया, आसीदभद्रमिह राक्षसराजरूपम् ।
शीघ्रं त्वया करुणया तदपाकरोस्त्वं, हा रामभद्र ! किमभद्रमैति नो मे ।।९।।

जनकनन्दिनी जानकी का अभद्र तो इस संसार में, आपका एक वर्ष का विरह देनेवाला वह दुष्ट राक्षसराज रावण ही था, उसको भी आपने अपनी कृपा के द्वारा शीघ्र ही दूर कर दिया, किन्तु हा प्रभो ! रामभद्र ! मेरा अभद्र तो उस राक्षसराज को भी नचानेवाला जगत्-विजयी स्मर-पिशाच है, वह क्यों दूर नहीं हो पा रहा है सखे ! ? ।।९।।

श्रीपादयोर्विरहरूपमभूदभद्रं, दीर्घं तवैव भगवन् ! भरतस्य साधोः ।
आलिङ्ग्य तं तु सदयं तदपाकरोस्त्वं, हा रामभद्र ! किमभद्रमपैति नो मे ।।१०

हे भगवन् ! राघवेन्द्र ! देखो, साधु-शिरोमणि भरतजी का तो आपके श्रीचरणों का दीर्घकालीन विरहरूप ही अभद्र था, आपने भरतजी को दयापूर्वक आलिङ्गन करके उनके विरहरूप अभद्र को दूर कर दिया था, किन्तु हा रामभद्र ! मेरा भी विरहरूप अभद्र क्यों दूर नहीं हो रहा है ? कृपया निज आलिङ्गन प्रदान करके उसको दूर भगा दीजिये सखे ! ।।१०।।

श्रीरामभद्र-दशकं दशकं मनुष्यो, नित्यं मुदा पठति भावनया समं यः ।
श्रीरामभद्रकृपया भुवि भूरि सौख्यं, भुक्त्वा ततः स हरिधाम समेति नूनम् ।।११

जो मनुष्य दशों दिशाओं में मङ्गलप्रद, "श्रीरामभद्र-दशक" नामक इस स्तोत्र का भावना के साथ नित्यप्रति प्रीतिपूर्वक पाठ करेगा, वह मनुष्य श्रीरामभद्र भगवान् की कृपा से भूमी में बहुत से सुखों का उपभोग करके, अन्त में निश्चय ही उनके धाम को प्राप्त कर लेगा ।।११।।

लोकाभ्रशून्यमिथुनैश्च मिते हि वर्षे, श्रीविक्रमार्कनृपतेरपि भाद्रमासे ।
वृन्दावने रचितवान् बहुभावपूर्णं, श्रीरामभद्रदशकं वनमालिदासः ।।१२।।

अनेक भावों से परिपूर्ण इस "श्रीरामभद्र-दशक"-नामक स्तोत्र का निर्माण विक्रम संवत् २००७ के भाद्रपद मास में वृन्दावनधाम निवासी कविरत्न श्रीवनमालिदास शास्त्री ने किया है ॥१२॥

टीका निर्माण समय—वि० सं० २०२९
अधिक वैशाख शुक्ला अष्टमी शुक्रवार मध्याह्नोत्तर

इति श्रीरामभद्र-दशकं समाप्तम् ।

श्रीरामकृष्ण-स्तोत्रम्

श्रीमन्मध्वाचार्यवर्यं नमामः, कारुण्याब्धिं कृष्णचैतन्यदेवम् ।
नित्यानन्दं नित्यमानन्दसिन्धुम्, श्रीलाऽद्वैतं व्यासपुत्रञ्च भक्त्या ॥१॥
आनन्दाब्धौ स्वाञ्जनान् मज्जयन्तौ, भूमेर्भारं दूरमापादयन्तौ ।
यौ कुं प्राप्तौ स्वं यशः ख्यापयन्तौ, तौ श्रीयुक्तौ रामकृष्णौ नमामः ॥२॥
यौ वात्सल्यान्नन्दगेहेऽवतीर्णौ, मातृत्वेन प्रेमरश्मौ निबद्धौ ।
स्वीचक्राते रोहिणी-श्रीयशोदे, तौ श्रीयुक्तौ रामकृष्णौ नमामः ॥३॥
वृन्दारण्ये चेरतुश्चारयन्तौ, गा गोपैर्यौ लीलया मर्दयन्तौ ।
रक्षोव्यूहान् देवताः प्रीणवन्तौ, तौ श्रीयुक्तौ रामकृष्णौ नमामः ॥४॥
यौ शोभेते नीलपीते दधानौ, वस्त्रे कक्षे शृङ्गवेत्रे दधानौ ।
गुञ्जाहारान् वंशिकां चाऽऽदधानौ, तौ श्रीयुक्तौ रामकृष्णौ नमामः ॥५॥
गौरां श्यामामङ्गशोभां दधानौ, बर्हापीडं मस्तके चाऽऽदधानौ ।
ऊर्ध्वं पुण्ड्रं श्रीललाटे दधानौ, तौ श्रीयुक्तौ रामकृष्णौ नमामः ॥६॥
श्रीनासाग्रे मौक्तिकं चाऽऽदधानौ, मुक्ताहारान् कौस्तुभं चाऽऽदधानौ ।
केयूरे वा बाहुयुग्मे दधानौ, तौ श्रीयुक्तौ रामकृष्णौ नमामः ॥७॥
हैमे बाह्वोः कङ्कणे चङ्कणाख्ये, सौवर्णे वा कर्णयोः कुण्डले द्वे ।
मञ्जीरौ वा हंसहारिप्रणादौ, तौ श्रीयुक्तौ रामकृष्णौ नमामः ॥८॥
शैलूषाणां वेषमात्रं दधानौ, मित्रावेशाद् धातुचित्राणि चाङ्गे ।
रत्नालीढां शृङ्खलां श्रोणिदेशे, तौ श्रीयुक्तौ रामकृष्णौ नमामः ॥९॥
भृङ्गाकारैः कुन्तलैरञ्चितौ यौ, यौ सर्वाङ्गैः सुन्दरौ हृद्यवेषौ ।
स्निग्धौ यौ हैयङ्गवीनादपीह, तौ श्रीयुक्तौ रामकृष्णौ नमामः ॥१०॥
गोपैः खेलां नृत्यवादित्रगीतैः, बाहुक्षेपैः सेतुबन्धादिभिर्वा ।
यौ चक्राते स्वाञ्जनान् प्रीणयन्तौ, तौ श्रीयुक्तौ रामकृष्णौ नमामः ॥११॥
हस्तौ धृत्वा मित्रयोरंसदेशे, यान्तौ गोष्ठे मोहनं चक्रतुर्यौ ।
गोगोपानां गोपिकानां तिरश्चाम्, तौ श्रीयुक्तौ रामकृष्णौ नमामः ॥१२॥

गर्वं जिष्णोर्मर्दयाञ्चक्रतुर्यौ, शैलश्रेष्ठं पूजयाञ्चक्रतुर्यौ।
तन्माहात्म्यं दर्शयाञ्चक्रतुर्यौ, तौ श्रीयुक्तौ रामकृष्णौ नमामः ॥१३॥

नन्दग्रामं भूषयाञ्चक्रतुर्यौ, नन्दात्मानं तोषयाञ्चक्रतुर्यौ।
भक्ताभीष्टं पोषयाञ्चक्रतुर्यौ, तौ श्रीयुक्तौ रामकृष्णौ नमामः ॥१४॥

चित्तं स्वानां मोषयाञ्चक्रतुर्यौ, वंशी-नादं घोषयाञ्चक्रतुर्यौ।
कंसाऽऽत्मानं शोषयाञ्चक्रतुर्यौ, तौ श्रीयुक्तौ रामकृष्णौ नमामः ॥१५॥

कान्त्या मारं मोहयाञ्चक्रतुर्यौ, भूषासारं शोभयाञ्चक्रतुर्यौ।
वृन्दागारं शोभयाञ्चक्रतुर्यौ, तौ श्रीयुक्तौ रामकृष्णौ नमामः ॥१६॥

प्रीतौ स्यातामेतया नः सखायौ, स्तुत्या प्रीतौ मित्रभावञ्च दत्ताम्।
गाढा प्रीतिस्तत्पदाब्जेषु चास्ताम्, धीरास्तान्नः पादपद्मे गुरूणाम् ॥१७॥

स्तोत्रञ्चैतद् रामकृष्णेशयोर्यै-, र्लोके लोकैर्गास्यते भक्तियुक्तैः।
भूमौ भोगान् प्राप्य भुक्त्वा तथान्ते,गोलोकस्तैः प्राप्स्यते नात्र चिन्ता ॥१८

श्रीश्रीकृष्णानन्ददासाभिधानाम्, शिष्येणेदं मालिदासभिधेन।
वृन्दारण्ये विक्रमादित्यकेऽब्दे, स्तोत्रं गीतं भूखखद्वन्द्वयुक्ते ॥१९॥

इति श्रीरामकृष्णस्तोत्रं समाप्तम्।

श्रीराधिका स्तोत्रम्

निर्माणकाल—वि० सं० १९९९ वैशाख

वयं श्रीराधायाः पदकमलयुग्मं प्रतिदिनम्
नमामः शुद्ध्यर्थं कलिकलुषलिप्तस्य मनसः।
तथा प्रेम्णा यस्य प्रियसहचरीभिः प्रतिदिनम्
कृता पूजा पुष्पैरपि च मुनिभिर्ध्यातमनिशम् ॥१॥

वयं श्रीराधायाः करकमलयुग्मं प्रतिदिनम्
स्मरामो भक्तेभ्यो वितरति मुहुर्यच्छमतुलम्।
तथा श्रीकृष्णांसे विलसति सदा रासरसके
सखीवृन्दैर्यस्मिन् विरचितमहो चित्रकुलकम् ॥२॥

मुखाब्जं राधायाः नयनपथमायातु लघु नः
सुनासं सुश्रोत्रं नयनकमलाभ्यामपि युतम्।
सुकेशं यस्मिंश्च भ्रुकुटियुगलं चापसदृशम्
तथेषद्धासाढ्यं विधिहरिहरैर्ध्यातमनिशम् ॥३॥

जपामो राधाया मुनिजनकुलैर्यत्सुजपितम्
प्रियं दिव्यं शब्दं वयमनुदिनं नाम विमलम् ।
हरिस्तस्मै दत्ते लघु मुदितचेताः स्वभजनम्
ह्यजस्रं यो राधां जपति मुदितः श्रीहरियुताम् ॥४॥

वाक्यपुष्पोपहारोऽयं श्रीमद्राधापदाब्जयोः ।
अर्प्यते तेन प्रीताऽस्तु दासे तु वनमालिनः ॥५॥

इति श्रीराधिका-स्तोत्रं समाप्तम् ।

★

श्रीयमुना-स्तोत्रम्

निर्माण समय—वि० सं० २०००

त्वयि स्नाता ध्याता तव सलिलपाता नमयिता
स्तुतेः कर्ता धर्ता तव रजसि मर्ता रविसुते ।
न चैवाऽऽख्यां वक्ता शमनसदने याति यमुने !
नमामस्त्वां नित्यां सकलगुणयुक्तां रविसुताम् ॥१॥

मुरारातेः कायप्रतिमललितं वारि दधतीम्
कलिन्दाद्रेः शृङ्गादपि पतनशीलां गतिमतीम् ।
स्वपादाब्जं ध्यातुर्जनिमरणशोकं वितुदतीम्
नमामस्त्वां नित्यां सकलगुणयुक्तां रविसुताम् ॥२॥

कदम्बानां पुष्पावलिभिरनिशं रूषितजलाम्
विधीन्द्राद्यैर्देवैर्मुनिजनकुलैः पूजितपदाम् ।
भ्रमद्गोगोधुग्भिर्विहगनिकरैर्भूषिततटाम्
नमामस्त्वां नित्यां सकलगुणयुक्तां रविसुताम् ॥३॥

रणन्भृङ्गश्रेणी-विकसित-सरोजावलियुताम्
तरङ्गान्तर्भ्राम्यन्मकर-सफरी-कच्छपकुलाम् ।
जलक्रीडद्रामानुज-चरणसंश्लेष-रसिकाम्
नमामस्त्वां नित्यां सकलगुणयुक्तां रविसुताम् ॥४॥

तरुश्रेणीकुञ्जावलिभिरभितः शोभिततटाम्
महोक्षाणां शृङ्गावलिभिरभितो मर्दिततटाम् ।
स्थितां वृन्दाटव्यां सततमभितः पुष्पितवनाम्
नमामस्त्वां नित्यां सकलसुणयुक्तां रबिसुताम् ॥५॥

निशायां यस्यां विम्बितममलतारागणमहो
विलोक्योत्कण्ठन्ते सकलसफरा अत्तुमनिशम् ।
विकीर्णं लाजानां निकरमिति मत्वा सरभसम्
नमामस्तां नित्यां सकलगुणयुक्तां रविसुताम् ॥६॥

शरन्मेघच्छाया सकलमनुजैर्यत्सलिलगा
हरेः स्वस्यामाप्तुं स्नपनमिति बुद्धया सरभसम् ।
किमायाता गर्भे सुरसरिदहो तर्क्यत इति
नमामस्तां नित्यां सकलगुणयुक्तां रविसुताम् ॥७॥

नृणामीक्षामात्रादपि सकलसौख्यं विदधतीम्
अनायासेनैवाऽखिलभुवनभोग्यं प्रददतीम् ।
स्वकान्तीनां व्यूहैर्बलभिदुपलं चापि तुदतीम्
नमामस्त्वां नित्यां सकलगुणयुक्तां रविसुताम् ॥८॥

ममैषा विज्ञप्तिः पदकमलयोस्ते तरणिजे !
वटे हा भाण्डीरे तव विमलतीरे निवसतः ।
हरे कृष्णेत्युच्चैरपि च तव नामानि गदतः
सदा वृन्दारण्ये जननि ! जननं यातु मम वै ॥९॥

किमायाता कालः स इह जनने मे हत विधे-
र्यदाऽऽयातः कृष्णो मधुमधुरवाङ्निर्झरजलैः ।
श्रुतेर्मार्गं सिञ्चन् करकमलयुग्मेन सहसा
मदङ्गं स्वाङ्गे हा व्रततिमिव वृक्षो गमयिता ॥१०॥

इदं स्तोत्रं प्रातः पठति यमुनायाः प्रतिदिनम्
शरीरी यस्तस्योपरि भवति प्रीता रविसुता ।
हरेः प्रेष्ठो भूत्वा हरिचरणभक्तिं च लभते
भुवो भागोन् भुक्त्वा व्रजति मरणान्ते हरिपदम् ॥११॥

त्रिभिः शून्यैर्द्वाभ्यां खलु परिमिते विक्रमसमे
शुभे ज्येष्ठे मासे सितदलदशम्यामपि तिथौ ।
रवेर्वारे प्रातस्तरणिदुहितुः स्तोत्रममलम्
कृतं तेनेदं यो भुवि हि वनमालीति विदितः ॥१२॥

इति श्रीयमुनास्तोत्रं समाप्तम् ।

श्रीविश्वनाथ-पञ्चकम्

निर्माणकाल—वि० सं० २००७ भाद्रपद

सर्वैः समर्चितपदाम्बुजसर्वकाल !, गंगाकपर्दपरिशोभितचन्द्रभाल ! ।
दाक्षायणी-समभिभूषित-वामभाग !, हे विश्वनाथ ! किमनाथमुपेक्षसे माम् ।।१
जाज्वल्यमानमभितो गरलाग्निना त्वं, लोकं विलोक्य सहसा कृपया परीतः ।
पीत्वा गरं समभिरक्षितसर्वलोक !, हे विश्वनाथ ! किमनाथमुपेक्षसे माम् ।।२
खिन्नं यदा जगदिदं त्रिपुरासुरेण, दृष्टं तदा करुणयाऽपि भृशं परीतः ।
हत्वा द्रुतं तमसुरं सुखितं चकर्थ, हे विश्वनाथ ! किमनाथमुपेक्षसे माम् ।।३
गंगावतारसमयेऽपि भगीरथेन, संप्रार्थितः करुणया जगदुद्धधर्थं ।
धृत्वा कपर्दविवरे बहु गाङ्गमम्भो, हे विश्वनाथ ! किमनाथ मुपेक्षसे माम् ।।४
गण्डूषवारि-परिप्रेक्षिणि वैजनाम्नि, म्लेच्छेऽपि तुष्टिमगमः किमु पूजके तु ।
नाम्ना ततोऽसि विदितः खलु वैजनाथः,हे विश्वनाथ! किमनाथमुपेक्षसे माम् ।।५
यः पंचकं त्रिनयनस्य मुदा ब्रवीति, तस्योपरि त्रिनयनः करुणां करोति ।
वृन्दाटवीवसतिलब्धकवित्वशक्ति-,रित्याह शंभुकृपया वनमालिदासः ।।६

इति श्रीविश्वनाथ-पञ्चकं समाप्तम् ।

श्रीमहाराजजी के प्राथमिक उत्सव पर सुनायी जानेवाली समस्यायें—

निर्माणकालः—वि० सं० १९९९

समस्या—'हृदि मे विराजताम्'

दिने यथा खे तु रविर्विराजते, यथा च रात्रौ हि शशिर्विराजते ।
व्रजेद् यया सा हरिसन्निधौ तथा, रतिर्गुरूणां हृदि मे विराजताम् ।।१।।
बलिश्च पातलतले विराजते, यथा च गङ्गा हरके विराजते ।
व्रजेद् यया सा हरिसन्निधौ तथा, रतिर्गुरूणां हृदि मे विराजताम् ।।२।।
यथार्णवे श्रीवरुणो विराजते, यमश्च कीनाशपुरे विराजते ।
व्रजेद् यया सा हरिसन्निधौ तथा, रतिर्गुरूणां हृदि मे विराजताम् ।।३।।
यथा वने सूर्यसुता विराजते, यथा च भक्तिर्वनके विराजते ।
व्रजेद् यया सा हरिसन्निधौ तथा, रतिर्गुरूणां हृदि मे विराजताम् ।।४।।
यथा च नाके मघवा विराजते, विधिर्यथा ब्रह्मपुरे विराजते ।
व्रजेद् यया सा हरिसन्निधौ तथा, रतिर्गुरूणां हृदि मे विराजताम् ।।५।।
यथा च रामो रमया विराजते, बलानुजो राधिकया विराजते ।
व्रजेद् यया सा हरिसन्निधौ तथा, रतिर्गुरूणां हृदि मे विराजताम् ।।६।।

यथा च रामो धनुषा विराजते, बलानुजो वंशक्रिया विराजते।
व्रजेद् यया सा हरिसन्निधौ तथा, रतिर्गुरूणां हृदि मे विराजताम् ॥७॥
यथैष दासो वनमालिनोऽपि नो, विना गुरून् सम्प्रति संविराजते।
व्रजेद् यया सा हरिसन्निधौ तथा, रतिर्गुरूणां हृदि मे विराजताम् ॥८॥

समस्या—'जीवनम्'

येषां श्रीगुरुपादपद्मयुगले भक्तिर्न नैसर्गिकी
जाता श्रीहरिपादपद्म-गुण-लीला-नाम-रूपेषु च।
सत्सङ्गोऽपि कृतो न यैरिह सतां नो सत्कृताः साधवो
यैः किञ्चिन्नहि कीर्तितं हरियशस्तेषां वृथा जीवनम् ॥१॥
यैर्मग्नैः कलिदुस्तरार्णवजले दुर्धर्षकामाहिके
लोभ-क्रोध-कुमीन-दुष्टमकरे मोहाख्यकूर्मैर्युते।
ईर्ष्यादावयुते च यैरधिगता संकीर्तनाख्या तरि-
स्तृष्णीमाँ बहुमानशैगलयुते तेषामृतं जीवनम् ॥२॥

समस्या—'भासते'

घस्रो नैव यथा विभाति विकलः सूर्येण शोभाकरो
रात्रिर्नैव यथा विभाति रहिता चन्द्रेण चानन्ददा।
क्षोणिर्नैव यथा विभाति रहिता राज्ञा प्रजातोषिणा
तद्वन्नो वनमालिदास उ विना श्रीमद्गुरून् भासते ॥१॥
पातालो न यथा विभाति बलिना रिक्तश्च शोभाकरो
नाको नैव यथा विभाति रहितो देवेन चेन्द्रेण वै।
लोको नैव यथा विधातुरपि शोभाढ्यो विना ब्रह्मणा
तद्वन्नौ वनमालिदास उ विना श्रीमद्गुरून् भासते ॥२॥
लोकस्याऽपि प्रचेतसो नहि यथा शोभा विना पाशिना
कीनाशेन विना विभाति नहि वै कालस्य लोको यथा।
पौलस्त्येन विनाऽलका नहि यथा शोभायुता दृश्यते
तद्वन्नो वनमालिदास उ विना श्रीमद्गुरून् भासते ॥३॥
रामो नैव यथा विना च रमया शोभायुतो दृश्यते
शोभाढ्यो न यथा विभाति चपलः कृष्णोऽपि राधां विना।
भक्तिर्नैव यथा विना च रतिना श्रीकृष्णसम्प्रापिका
तद्वन्नो वनमालिदास उ विना श्रीमद्गुरून् भासते ॥४॥

श्रीवृन्दावनीय-श्रीनिवास-विद्यालयाध्यक्षं—

श्री श्रीधराचार्यं प्रति विज्ञप्तिरियम्

निर्माणकाल—वि० सं० २०००

श्रीरामकृष्ण इति ते विदितः सुपुत्रो, यह्येव लोकमपहाय परं प्रयातः।
तह्येव शोकलुलितानि नृमानसानि, जातान्यहो ! विधिविचेष्टितमेव सर्वम् ॥१

अतः शोको युष्मद्-विधपुरुषयोग्यो न भवति
कुतो लोकस्येयं कृतिरतिविचित्रा भगवतः।
न जानीमः कस्माद् विघटयति संयुक्तमनसो
वियुक्तानन्यान् वा पुरुषनिकरान् योजयति सः ॥२॥

एतादृशो नहि पुनर्भवितेति भूमावेवं विचार्य मनुजा विमनी भवन्ति।
संसारदुःखमपहाय परं प्रयात, एवं विचार्य सुधियः सुखिनो भवन्ति ॥३॥

जयति जयति श्रील-श्रीधराचार्यवर्यः
भुवि विदितयशाः सम्पूजिताचार्यवर्यः।
जगति भवति वेदान्तस्य चाचार्यवर्यः
प्रवचनकरणे श्रीभाष्यकस्यातिवर्यः ॥४॥

ममैषा विज्ञप्तिः पदकमलयोस्ते गुणनिधे !
समायातोऽहं ते गुणगणमुपाकर्ण्य सविधम्।
प्रवृत्ती रङ्गाख्ये भुवि विदितविद्यालयवरे
विधेया श्रीमद्भिर्मम सपदि विख्यातविभवैः ॥५॥

यः कश्चिद् भोजराज्ये प्रणयति मनुजो भोजराजस्य गोष्ठ्यां
श्लोकं श्लोकद्वयं वा सपदि स लभते वर्णमात्रस्य लक्षम्।
श्लोकानां पंचकेनापि हि मम यदि नाल्पीयसी पूरिताशा
ज्ञातं यातं तदा संस्कृतकवि-कविताया अहो मूल्यमेव ॥६॥

विज्ञापको—वनमालिदासशास्त्री

★

श्रीकुरुक्षेत्र-मण्डलान्तर्गत-पुण्डरीग्रामलब्धावताराणां, श्रीहरिप्रियागर्भ-प्रसूतानां, श्रीशालिग्रामोपाध्यायात्मजानां, तर्कवागीश-तर्करत्न-तर्क-तीर्थाद्युपाधिविभूषितानां, श्रीस्वामिनीशरणचरणचञ्चरीकाऽ-मोकरामशास्त्रिणां, पादारविन्दयोर्वाक्पुष्पाञ्जलयः

निर्माणकाल—वि० सं० २००१ पौष शु० पौर्णमासी

नमनीयपदोऽतुलनीयपदः, पृथिवीतलकेतुरभूदपि यः।
सुयशा विदुषामपि पूज्यतम-,स्तममोलरामबुधं प्रणुमः ॥१॥

यश्चावतीर्य कुरुदेशमलञ्चकार, वृन्दाटवीमपि च यः समलञ्चकार।
यस्तर्ककर्कशधियः शिथिलीचकार, तं स्वामिनीशरणदासमहं प्रपद्ये ॥२॥
यो नास्तिकानपि च सास्तिकतां निनाय, तस्तर्करीतिभिरलं विमुखाञ्जिगाय।
निम्बार्कमार्गमवलम्ब्य हरिं त्वियाय, तं स्वामिनीशरणदासमहं प्रपद्ये ॥३॥
निम्बार्कदेशिकवरस्य च सम्प्रदाय, ऊर्ध्वीकृतो बहुषु ग्रन्थवरेषु टीकाः।
निर्माय येन सरलाः सुखदा वटूनां, तं स्वामिनीशरणदासमहं प्रपद्ये ॥४॥
वृन्दाटवीमणिरमोकरामशास्त्री, यह्यॆव लोकमपहाय परं प्रयातः।
तह्यॆव शोकलुलितानि नृमानसानि, जातान्यहो विधिविचेष्टितमप्रतर्क्यम् ॥५॥

सर्वेष्वेव गतेषु पण्डितवरेष्विष्टं पदं भूतलाद्
यं गोप्तारमुपेत्य नैव गणिताः के नास्तिका मादृशैः।
नामाभासत एव यस्य हि पलायन्तेस्म ते नास्तिका-
स्तेनाऽमोलकशास्त्रिणा विरहिता रोदित्यहो मेदिनी ॥६॥

निष्णातः किल तर्कशास्त्रजलधौ यः सर्वसिद्धान्तविद्
विद्वद्वर्यगणाग्रगण्यगणना लब्धा च येनाऽऽत्मना।
नम्रत्वं समदर्शिता च प्रथिता सर्वप्रियो यस्त्वभूत्
शून्येयं प्रतिभात्ति तेन रहिता हा भारती-भूमिका ॥७॥

श्रीनिम्बार्कसभा-विभूषणमणिर्विद्वद्वरेण्योऽपि य
आकृत्या परिचेतुमेव नहि यः शक्योऽस्ति विद्वानिति।
अन्तर्भक्तिरसेन पूर्णहृदयो बाह्ये तु साधारण-
स्तस्याऽमोलकरामशास्त्रिण इहाऽऽकल्पं यशः स्थास्यति ॥८॥

अतः शोकोयुष्मद्विध-पुरुषयोग्यो न भवति
कुतो लोकस्येयं कृतिरतिविचित्रा भगवतः।
न जानीमः कस्माद् विघटयति संयुक्तमनसो
वियुक्तानन्यान् वा पुरुशनिकरान् योजयति सः ॥९॥

एतादृशो नहि पुनर्भवितेह भूमा-
वेवं विचार्य मनुजा विमनीभवन्ति।
संसारदुःखमपहाय परं प्रयात
एवं विचार्य विबुधाः सुखिनो भवन्तु ॥१०॥

कांस्कान् गुणानिह गदाम्यहमल्पबुद्धि-
स्तेषां गुणान् कथयितुं भुवि कः समर्थः।
स्वल्पानिहैव कथयत्यनभिज्ञकोऽपि
जिह्वाफलं फलयितुं वनमालिदासः ॥११॥

स्वामि-श्रीअनन्तदासाष्टकम्

निर्माणकाल—वि० सं० २००२

श्रीराधिका-मदनमोहन-पादपद्म-,ध्यानानुरक्तहृदयः स्पृहणीयशीलः ।
यो मानदः स्वयमहो बहुमानहीनः, सोऽनन्तदास उदियाद् हृदये सदा नः ॥१
यो नास्तिकानपि च सास्तिकतां निनाय, यस्तर्करीतिभिरलं विमुखाञ्जिगाय ।
निम्बार्कमार्गमवलम्ब्य हरिं त्वियाय, सोऽन्तदास उदियाद् हृदये सदा नः ॥२
निम्बार्कदेशिकवरस्य च सम्प्रदाय-,मूर्ध्वीचकार बहुसज्जनसेवया यः ।
सत्सेवया पदमवाप दुरापमन्यैः, सोऽनन्तमास उदियाद् हृदये सदा नः ॥३
वैराग्यरागरसिको ह्यपि माठपत्यं, लब्ध्वा गुरोरपि परम्परया स्वयं यः ।
प्रेम्णाऽददाद् बुध-धनञ्जयदासकाय, सोऽनन्तदास उदियाद् हृदये सदा नः ॥४
यः सर्वतीर्थ-परिशीलनजागरूको, भक्तिप्रचारणकलाकुशलश्च योऽभूत् ।
लब्धाह्वयो जगति भूरि महाशयानां, सोऽनन्तदास उदियाद् हृदये सदा नः ॥५
वृन्दावने भवति सम्प्रति साधुसेवा, श्रीकाठिया इति भुवि प्रथिते पुराणे ।
स्थाने च यस्य नितरां जनवन्दनीया, सोऽनन्ददास उदियाद् हृदये सदा नः ॥६
यः सन्तदासगुरुमाश्रयति स्म धीरं, वीरं वरं जगति सज्जनसेविकायाम् ।
गूढं गुणैर्निखिलदर्शनलब्धपारं, सोऽनन्तदास उदियाद् हृदये सदा नः ॥७
भूमेः सहिष्णुरपि सागरतो गभीर-,स्ताताद्धितः सुतहितोऽपि च मातृकोटेः ।
धीरो महीधर इवाऽमरवृक्षग्तुल्यः, सोऽनन्तदास उदियाद् हृदये सदा नः ॥८
योऽनन्तदास-महिमाष्टकमेतदीशं, संश्रावयत्यतितरां मधुरस्वरेण ।
सोऽनन्तकीर्तिधनधान्यमवाप्य लोके, संख्यां समेति बहुमानमनन्तलोके ॥९
काँस्कान्गुणानिहगदाम्यहमल्पबुद्धि-,स्तेषां गुणान्कथयितुं भुवि कः समर्थः ।
स्वल्पानुदाहरदसावनभिज्ञकोऽपि, जिह्वाफलं फलयितुं वनमालिदासः ॥१०

श्रीअनन्तदासाष्टकं समाप्तम् ।

अथ श्रीविष्णुयज्ञाभिधाने महनीयकीर्तेरनन्तदासस्य स्मृतिमहोत्सवे— समस्यात्रय-पूर्तिः—वि० सं० २००२

१—नित्यलीलानुभावम्—पूर्वं मन्दाक्रान्तावृत्तद्वयेन—

यः संसारे निगडितमतिः कामलीलाविलीनः
पापासङ्गाद् विचलितमतिर्भक्तिभावैर्विहीनः ।
स्त्रीणामोतुर्विरसहृदयो राधिकामाधवस्य
ज्ञातुं शक्नोत्यपि स किमु भो नित्यलीलानुभावम् ॥१॥

राधाकृष्णाचरितममलं सन्मुखाद् यः शृणोति
तन्नामानं निगदतितरां तत्पदाम्भोरुहालिः।
वृन्दारण्ये वसति नितरां प्रेमपुञ्जालिकुञ्जे
ज्ञातुं शक्नोत्यपि स मनुजो नित्यलीलानुभावम् ॥२॥

जगति भजनभावे यस्य विख्यातिरुच्चै-
र्हरिपदरतचेता भक्तिवैराग्यसीमा।
अनुभवतु सदा सोऽनन्तदासोऽपि राधा-
व्रजपतिसुतयोर्वै नित्यलीलानुभावम् ॥३॥

समस्या नं० २—अनन्ता

दुर्वाससात्ववगतो महिमाऽम्बरीष-
सङ्गात्सतामिति न वेत्ति बुधस्तुको वा।
कृष्णोऽप्यनुव्रजति पादरजोभिलाषी
काँस्कान् गदामि हि गुणाँस्तु सतामनन्ताः ॥४॥

दानेन दातुरपि नैव तथेह जीयाद्, गानेन गातुरपि वक्तुरपि प्रयोक्तुः।
शास्त्रार्थकर्तुरपि बोद्धुरपि प्रयोद्धुः, कीर्तिर्यथाविजयतेऽपि सतामनन्ता ॥५॥

समस्या नं० ३—पीयते

विषयिभिर्विषयः परिपीयते, हरिजनैर्हरिनाम निपीयते।
स्वनयनैः सुमहः परिपीयते, श्रुतिपुटैः कविता परिपीयते ॥६॥

सुन्दरीवृत्तद्वयम्—

मधुराकृति विश्वमोहनं, मुखमानीलरुचं विकस्वरम्।
हरिभक्तिपरायणैर्हरे-,र्नयनाह्वैश्चषकैर्निपीयते ॥७॥
इह संसदि ये स्थिता जना, नयनान्तःकरणैकवृत्तयः।
कविता-रसभाव-कोविदा, अपि तैरेव रसो निपीयते ॥८॥

येषां श्रीगुरुपादपद्मयुगले भक्तिर्न नैसर्गिकी
जाता श्रीहरिपादपद्मगुणलीलानामरूपेषु च।
सत्सङ्गोऽपि कृतो न यैरिह सतां नो सत्कृताः साधवः
ते मज्जन्ति भवार्णवे विषय-मद्यं यैः सदा पीयते ॥९॥

ते मज्जन्ति न वै भवार्णवजले दुर्धर्षकामाहिके
लोभ-क्रोध-कुमीन-दुष्टमकरे मोहाख्य-वूर्मैर्युते।
इर्ष्यादाव-युते मदोर्मिललिते तृष्णामहाशैवले
यैस्त्यक्त्वाऽन्यसहायतां भगवतो नामामृतं पीयते ॥१०॥

बाल्ये बालविलास-हास-मतिना मातुः पयः पीयते
तारुण्ये तरुणी-विलासमतिना कान्ताऽधरः पीयते ।
वार्द्धक्ये बहुचिन्तयाऽल्पमतिना चिन्तारसः पीयते
नो केनाऽप्यमुकुन्दलीन-मतिना नामामृतं पीयते ॥११॥
श्रीमद्भागवतादिग्रन्थवदनः श्रीकृष्ण-संकीर्तनो
विद्वद्वर्य-सुधामय-प्रवचनः श्रीरासलीलाम्बरः ।
नानागानतरङ्गरङ्गललितः सद्वृन्द-वृन्दारको
विष्णोर्यज्ञमहोत्सवो धृततनुर्भाग्यैर्मया पीयते ॥१२॥

स्वामिश्रीकृष्णानन्ददासपादपद्मानुचरेण वनमालिदासशास्त्रिणा कृता समस्यापूर्तिः ।

श्रीराधाकृष्ण-प्रशंसापत्रम्

वि० सं० २००४ चैत्र कृष्णा २ शुक्रवार

राधा-कृष्णो रमणमकरोद् यत्र धूलौ नितान्तम्
वृन्दारण्ये निगमगदिते प्रेम-पुञ्जालि-कुञ्जे ।
तत्राऽवात्सीद् य उ रमणरेत्यां विनिर्माय हर्म्यम्
राधाकृष्णः स जयति वणिग् दानवीरो महात्मा ॥१॥
नित्यं स्नात्वा तरणि-तनया-वारिणि प्रातरेव
मौनालम्बी हरि-हर-समर्चां सदा यः करोति ।
होमं कृत्वा विधिवदपि चाऽश्नाति कृष्णोपभुक्तम्
राधाकृष्णः स जयति वणिग् दानवीरोमहात्मा ॥२॥
लब्ध्वैश्वर्यं विपुलमपि यो नोपभोगं करोति
गेहे स्थित्वाऽपि च भरतवन्न्यासिलीलां तनोति ।
तस्मादन्यः क इह विभवे सत्यपीशो विरक्तुम्
राधाकृष्णः स जयति वाणिग् दानवीरो महात्मा ॥३॥
वृन्दारण्यस्थित-हरिजनक्षुद्विबाधानिवृत्यै
यः प्रीत्यैव प्रचुर-सुविधं क्षेत्रमाविश्चकार ।
छात्रस्तोमाऽध्ययन-सुखदां पाठशालां विशालाम्
राधाकृष्णः स जयति वणिग् दानवीरो महात्मा ॥४॥
वस्त्रोपानन्निचयमपि यः शीतबाधानिवृत्यै
सर्वेभ्योऽपि प्रमुदितमनाः प्रत्यहं दातुमीशः ।
अन्यद् वा यो वितरति सदा वाञ्छितस्याऽनुसारम्
राधाकृष्णः स जयति वणिग् दानवीरो महात्मा ॥५॥

दीनाऽनाथान् यवन-दलितान् यश्च पाञ्चालदेश्यान्
वस्त्रैर्हीनानशन-रहितान् बाल-वृद्धान् समेतान् ।
सर्वानेव स्व-शरणगतान् सौख्यभाजश्चकार
राधाकृष्णः स जयति वणिग् दानवीरो महात्मा ।।६।।
राधाकृष्णऽऽचरितमललं प्रत्यहं यः पपाठ
गीतापाठं प्रमदसुधयाऽऽप्लावितश्चाततान ।
वारंवारं हरि-हर-गुणान् सन्मुखाद् यः शृणोति
राधाकृष्णः स जयति वणिग् दानवीरो महात्मा ।।७।।
देशे देशे प्रथितसुयशा दान-सम्मानहेतो-
रस्मिन्काले कलिकलुषितेऽप्यर्थिनां कल्पवृक्षः ।
काँस्काँस्तस्याऽविदित-महिमाऽहं गुणान् वर्णयामि
राधाकृष्णः स जयति वणिग् दानवीरो महात्मा ।।८।।
वेदाऽभ्राऽभ्रश्रवणगणिते वत्सरे वैक्रमीये
चैत्रे मासेऽसितदलवरे शाजहाँ-वाटिकास्थः ।
राधाकृष्णाऽम्बुजकरयुगेऽदात् प्रशंसाढ्य-पत्रम्
दासान्तो यो भुवि हि वनमालीति नाम्ना प्रसिद्धः ।।९।।
यश्चैतच्छृणुयान्नित्यं यश्च भक्त्या पठेन्नरः ।
उभावपि लभेयातां राधाकृष्णार्जितं फलम् ।।१०।।
राधाकृष्णो धानुका यः स जीयात्, पुत्रस्तस्याऽयं हनूमत्प्रसादः ।
यस्यैवाऽयं पूर्णया चेष्टया च, विद्यादाता चाल्यते धर्मसंघः ।।११।।
श्रीभूपनारायण-विज्ञजातः, श्रीराजवंशीतिद्विवेदिविद्वान् ।
श्रीगौत्तमर्षेरपि वंशरत्नं, विराजते सम्प्रति धर्मसंघे ।।१२।।
साहित्य-सिन्धोरपि पारदृश्वा, शाब्दे परे ब्रह्मणि चाप्यरंस्त ।
अन्येषु शास्त्रेष्वपि लब्धवर्णो, वर्णाश्रमाचार-परायणश्च ।।१३।।
हनुमत्प्रसादजनकं, राधाकृष्णं सुधानुकाभिख्यम् ।
अभिनन्दति रतिपूर्वं, शास्त्री वनमालिदासाख्यः ।।१४।।

श्रीसागर-धर्मपत्न्यभिनन्दनपत्रम्

निर्माणकालः वि० सं० २००५

वृन्दावने विविधमञ्जुनिकुञ्जपुञ्जे, निर्माय या रमणरेतितले सुहर्म्यम् ।
श्रीयामुने तटवरे वसतिं चकार, सा श्रेष्ठिनी जयति सागरधर्मपत्नी ।।१।।
लब्ध्वा तमःप्रचुरमप्यबला-शरीरं, प्राचीकटद् बलवतीत्वमघारिभक्त्या ।
दुर्जेय-षड्रिपुजयेन सुशोभमाना, सा श्रेष्ठिनी जयति सागरधर्मपत्नी ।।२।।

नित्यं प्रगे तरणिजा-सलिले सलीलं, स्नात्वा समर्चति रमेश-महेश-मूर्ती ।
रामायणाध्ययनमातनुते स्म भक्त्या, सा श्रेष्ठिनी जयति सागरधर्मपत्नी ॥३॥
दीनाऽन्धदुःखदलितान् पलितान् सबालान्, दृष्ट्वा जनाँस्म दयते धुनुते तदार्तिम् ।
दात्रीषु लब्धगणना गणनाथ-भक्त्या, सा श्रेष्ठिनी जयति सागरधर्मपत्नी ॥४॥
सौम्याकृतिः कृतिषु लब्धपदा पदाढ्या, स्वाढ्याऽपि या निरभिमानगुणेन गुण्या
गण्या सतीषु हरिभक्तिमतीषु तासु, सा श्रेष्ठिनी जयति सागरधर्मपत्नी ॥५॥
रामायणद्वितयकस्य नवाहपाठं, सप्ताहपाठमपि भागवतस्य सद्भिः ।
याऽकारयद् द्विजवरैर्विविधोपचारं, सा श्रेष्ठिनी जयति सागरधर्मपत्नी ॥६॥
मूर्त्तेव कीर्तिरपि या खलु सागरस्य, प्रेम्णा हठादपि च सागरके लसन्ती ।
गङ्गेव सागर-समागम-शोभमाना, सा श्रेष्ठिनी जयति सागरधर्मपत्नी ॥७॥
एकाद्रिधारिणमसूत सुतं यशोदा, याऽनेककार्यगिरिधारिणमात्मलालम् ।
नाम्ना गुणेन किल याऽपि सरस्वतीति, सा श्रेष्टिनी जयति सागरधर्मपत्नी ॥८॥
सम्वत्सरे शर-ख-ख-श्रवणैश्च गण्ये, श्रीविक्रमस्य मधुमासि च शुक्लपक्षे ।
प्रेम्णाऽर्पयत्तदभिनन्दनपत्रमेतत्, तस्या करे लघुवया वनमालिदासः ॥९॥

जमीदारी-प्रथोन्मूलन-समितेरध्यक्षस्य श्रीविश्वम्भरदयालत्रिपाठिमहोदयस्य-

प्रशंसा-पत्रम्

निर्माणकालः—वि० सं० २००७ चै० शु० ७

शार्दूलविक्रीडितं—

यो विश्वस्य भरः स एवविबुधैर्विश्वम्भरः कीर्तितो
यो वा लाति दयां जनेषु विबुधास्तं वै दयालं जगुः ।
यो वेदत्रितयीं समां पठति वा सोऽयं त्रिपाठी मतो
रूढिर्यौगिकता च शक्तियुगलं नामान्वयं वक्ति ते ॥१॥

उपगीति-चतुष्कमेतत्—

भारतममुं विदधता, स्वतन्त्रं विदेशिशासनतः ।
उद्योगो भवता यो, विहितस्तस्य त ऋणीवाऽयम् ॥२॥
शासनकाले भवतः, शिक्षापद्धतिरियं प्रचुरा ।
वेराहृक्कान्तारे, कलयति ननु कीर्तिमालां के ॥३॥
क्षेत्रेऽस्मिन्निवसद्भि-,र्भूम्यादेः पूर्णसहयोगः ।
कृतः परन्त्वतिवृष्टेः, पीडामेतेऽगमन् बहुलाम् ॥४॥
क्षेत्रपतित्वोन्मूलन-,समितेः प्रामाण्यता-समितेः ।
हे अध्यक्षमहोदय !, पूरय स्वल्पाऽभिलाषं नः ॥५॥

स्रग्विणी-द्वयम्—

स्वल्पकुल्या-चिकित्सालयोद्घाटनैः, क्षेममस्मिस्थले जायतां नो द्रुतम् ।
न्यूनता चाऽपि विद्यालयेनाऽमुना, भाविनी पूरिता हाईसुस्कूलजा ॥६॥
मान्यता चार्थिकः कोऽपि योगः प्रभो !, दापनीयो नु विद्यालयायाऽस्मकै ।
प्रार्थनाऽस्माकमेषा ध्रुवं स्वीकृता, स्यादिति श्रीमता धीमताऽऽशास्महे ॥७॥

भुजङ्ग-प्रयातम्—

कृपादृष्टिवृष्टिश्च विद्यालयेऽस्मिन्, सदा श्रीमता सानुकूलं विधेया ।
शिलान्यासमुद्घाटनं यस्य कर्तुं, कृताऽस्मासु दीनेषु पूर्णाऽनुकम्पा ॥८॥

उपगीतिरेषा—

विद्याविवर्द्धिनीयं, समितिर्वैराख्य-नगरस्था ।
इदं प्रशंसापत्रं, तव करकमले समर्पयति ॥९॥

मन्दाक्रान्ता—

नीचैर्नीचैर्ननु विटपिनां भूरिविद्यालयानाम्
प्रादुर्भूतिं वयमिह करिष्यामहे सा प्रतिज्ञा ।
पूर्णा कार्या वयमिति चिरं श्रीमतां स्मारयामः
स्मर्त्तारोऽपि प्रभुकृतिमिह प्रीतिभाजो भवन्ति ॥१०॥

अभिनन्दति रतिपूर्वं, श्रीविश्वम्भरदयाल-शर्माणम् ।
श्रीवृन्दावनवासी, शास्त्री वनमालिदासाख्यः ॥११॥

श्रीसत्यनारायणाष्टकम्

निर्माणकालः—वि० सं० २०१० के अन्तिम दिन

वामे यस्य रमा सदा विजयते विघ्नेश्वरो दक्षिणे
प्रसादाद् बहिरञ्जनीजनिरसौ नागान्तकः सम्मुखे ।
प्रासादाश्चतुरन्तविंशतियुता यस्य प्रभोः पार्श्वतो
वन्दे तं परमेश्वरं सुरगुरुं श्रीसत्यनारायणम् ॥१॥

रेवा-रोधसि मन्दिरे भृगुपुरे तीर्थेऽश्वमेधे तथा
यस्याऽऽस्ते गदयांचितं कमलयुक् श्रीदोर्युगं दक्षिणम् ।
वामं दोर्युगमंचितं च विमलं चक्रेण शंखेन च
वन्दे तं परमेश्वरं सुर-गुरुं श्रीसत्यनारायणम् ॥२॥

श्यामांभोदनिभः किरीटललितः पीताम्बरः सुन्दरो
भक्तानामखिलार्थदोऽतिकरुणः संसारतस्त्राणकृत् ।

मंजीरांचितपद्युगः कटितटे काञ्च्याश्चितो यः सदा
वन्दे तं परमेश्वरं सुरगुरुं श्रीसत्यनारायणम् ॥३॥

उत्पत्ति-स्थिति-संहृति-त्रिकमिदं विश्वस्य यस्मात् सदा
ब्रह्माण्डानि तनूरुहेषु गणनातीर्णानि यस्याऽऽत्मनः।
रक्षार्थं सुर-साधु-सद्द्विज-गवां यस्याऽवतारा मता
वन्दे तं परमेश्वरं सुरगुरुं श्रीसत्यनारायणम् ॥४॥

यः सत्यात्मकवारिराशिनिलयो यः सत्यशेषे स्थितो
यः सत्येन्दिरया सुलालितपदो यः सत्यसंवाहनः।
यः सत्ये निहितस्त्रिसत्य उदितः सत्यव्रतः सत्यभाक्
वन्दे तं परमेश्वरं सुरवृरुं श्रीसत्बनारायणम् ॥५॥

काशीस्थद्विज-काष्ठविक्रयकरौ तुङ्गध्वजः साधुविट्
तेऽभूवन् यदनुग्रहेण नितरां मुक्ताः सदा संकटात्।
कर्ताऽद्यापि करोति यो निजजनान् मुक्तान् सदा दुःखतो
वन्दे तं परमेश्वरं सुरगुरुं श्रीसत्यनारायणम् ॥६॥

लोकेशेशशचीपति-प्रभृतिभिर्देवैः सदा पूजितो
यः पूजामधुनापि भावसहितां धत्ते सुभक्तैः कृताम्।
भक्तेष्टं सदयं प्रदातुमिव यश्चास्ते प्रसन्नाननो
वन्दे तं परमेश्वरं सुरगुरुं श्रीसत्यनारावणम् ॥७॥

स्तोतुं शेष-सरस्वती-गणपति-ब्रह्मादयो यं नहि
शक्तास्तं गुणसागरं कथमहं क्षुद्रः स्तुवेऽशेषतः।
श्रद्धा-पूर्विकया प्रसीदतितरां नत्याऽपि यः स्वेष्वतो
बन्दे तं परमेश्वरं सुरगुरुं श्रीसत्यनारायणम् ॥८॥

दीनोद्धारपरायणं सकरुणं स्तुत्याऽनया स्तोति यः
श्रद्धाभक्तियुतो गुणैर्विरहितोऽपीष्टं स्वयं मानवः।
भुक्त्वा भूमितलेऽपि भोगनिचयान् द्राक् पुत्रपौत्रैर्युतः
प्रोत्तीर्यैति भवार्णवं सुरगुरुं श्रीसत्यनारायणम् ॥९॥

ज्योतिर्विद्वरमष्टकं त्विदमलं श्रीमत्तुलाशंकरं
प्रीणात्वष्टकर्तुरेव करणं श्रीमत्कृपाशंकरम्।
शून्येन्द्वभ्रकरैर्मितेऽन्तिमदिने श्रीविक्रमाब्देऽष्टकं
प्रोक्तं श्रीवनमालिदासकविना श्रीयुक्तवृन्दावने ॥१०॥

"श्रीसत्यनारायणाष्टकम्" सम्पूर्णम्।

श्रीसत्यनारायणजी की आरति

निर्माणकालः—वि० सं० २०११ वैशाख कृ० २

आरति सत्यनारायणजी की। भक्त मनोरथ सुरतरुजी की ॥टेक॥
वामाङ्गे श्रीरमा विराजै, दहिने गणनायक सुख साजै।
बाहिर अंजनि पुत्र विराजै, सन्मुख नागान्तक वाहन की ॥१॥
दक्षिण भुजा युगल में जिनके, गदा कमल सुखदायक जनके।
वायें भुजा सहित कंकण के, शंख चक्र पददेव धुनी की ॥२॥
श्यामांगे पीताम्बर राजै, मस्तक मणिमय मुकुट विराजै।
कटि किंकिणि पग नूपुर बाजे, भक्त मनोरथ दानि धनी की ॥३॥
विप्र काष्ठधरवा चन्द्रकेतु, साधु वैश्य तुङ्गध्वज हेतु।
तुम्हरी कृपा विपत्ति निपेतुः, भक्त हेतु अवतार कली की ॥४॥
सुरनर मुनिवर सबही ध्यावैं, पाय मनोरथ अति सुख पावैं।
श्रीवनमालिदास कवि गावैं, भक्तन हेतु कृपा शंकर की ॥५॥

श्रील श्री १०८ श्रीमत्संकर्षणदासाख्य-महतः करकमलयोः सादरं समर्पितमिदमभिनन्दनपत्रम्

निर्माणकालः—वि० सं० २०११

लेभे जन्म सुरार्चितं द्विजकुले प्रार्थ्यं सुरैर्भारते
कौमारेऽपि मनोऽलिरक्तिमकरोद् रामाङ्घ्रिकंजद्वये।
योऽयं यौवनमेत्य वृत्तिमदधाद् वैराग्यसीमास्पृशाम्
श्रीसंकर्षणदास-सज्जनमणिः सोऽयं सभामध्यगः ॥१॥
बाल्ये यौवनकेऽपि वार्द्धकवरेऽवस्थात्रये यः समो
लोकैर्लोचनगोचरीकृत इतः सौन्दर्यसम्पूजितः।
कालं स्वं समयापयच्च निखिलं श्रीरामनाम्नां जपे
श्रीसंकर्षणदास-सज्जनमणिः सोऽयं सभामध्यगः ॥२॥
यः श्रीमद्रघुनाथ-मन्दिरमिदं वृन्दावनेऽस्थापयत्
विद्यावर्द्धनकारिणीमपि शुभां यः पाठशालां पुरा।
यत्राऽधीत्य विदिक्षु कीर्तय इवच्छात्रा गता मादृशाः
श्रीसंकर्षणदास-सज्जनमणिः सोऽयं सभामध्यगः ॥३॥
प्रत्यब्दं विदधाति यः सहमुदं श्रीराम-पाटोत्सवं
विद्वांसोऽपि सभागता इव सुरा येनार्चिताः सादरम्।

कीर्तिं दिक्षु वितन्वतेऽपि मुदिता गन्धं तु वाता इव
श्रीसंकर्षणदास-सज्जमणिः सोऽयं सभामध्यगः ॥४॥
यस्याऽऽचार-विचार-चारुसरणिः श्रेयोऽर्थिभिर्गम्यतां
यस्य श्रीयुतपादपद्मयुगलं मूर्ध्ना मुदा नम्यताम् ।
यस्य श्रीहरिभक्तिमत् सुचरितं श्रुत्या सदा श्रूयताम्
श्रीसंकर्षणदास-सज्जनमणिः सोऽयं सदा जीयताम् ॥५॥
अभिनन्दति रतिपूर्वं, महतः श्रीसंकर्षणदासाख्यान् ।
श्रीवृन्दावनवासी, शास्त्री वनमालिदासाख्यः ॥६॥
यस्योद्यमवशवर्ती, प्रत्यब्दं रामपाटोत्सवो भवति ।
यमुनाप्रसादशास्त्री, सोऽयं सत्प्रबन्धको जयति ॥७॥
महतस्तस्य हि पौत्रः, श्रीरघुवंशभूषणाचार्यः ।
रामाऽऽरामे सोऽयं, सम्प्रति तत्पदं सुशोभयति ॥८॥

श्रीहरिदेव-मन्दिराध्यक्ष-श्रीरामानुजाचार्याणाम् अभिनन्दनम्

निर्माणकालः—वि० सं० २०११

श्रीकेशवार्यतनयो विनयोक्तिपूर्णो, पूर्णोऽवतार इव चेतसि नः प्रविष्टः ।
इष्टः समस्तजगतामगतां गतानां, तेने हिताय किल भक्तिवितानमत्र ॥१॥
कथा-रीतिं श्रुत्वा प्रणयभरमायान्ति सुधियः
सदाचारं दृष्ट्वा सुमतितिमायान्ति कुधियः ।
परास्ताः शास्त्रार्थ-प्रवचन-सुरीत्या हतधियः
सदा यस्य प्राज्ञा ! जयति स हि रामानुजमुनिः ॥२॥
सौन्दर्यामृतमुद्गिरद्भिरभितः सम्मोह्य मन्दस्मितै-
रानन्दाब्धि-निमग्नचेतस इह श्रोतॄन् विधत्ते स्म यः ।
शास्त्रार्थं कथयैव व्यक्तमकरोत् प्रीत्या सुरीत्या च सः
श्रीरामानुजदेशिको विजयते वेदान्तचिन्तामणिः ॥३॥
जीर्णं श्रीहरिदेवमन्दिरमिदं यः सँश्चकाराद्भुतं
यात्रायां खलु यश्च दक्षिणदिशश्चक्रे बहून् वैष्णवान् ।
गोदाम्बां विधिपूर्वकं हरिवने यः स्थापयामास सः
श्रीरामानुजदेशिको विजयते वेदान्तचिन्तामणिः ॥४॥
श्रीरामानुजपद्धतिं प्रकटयन् योऽर्वन्तमुत्तारयन्
प्रेताच्छ्रेष्ठिसुतां पृथग् विरचयन् बन्धाज्जनान् मोचयन् ।
सिद्धान्तं हरिभक्तिसाधकतमं सर्वत्र संस्थापयन्
कालं स्वं समयापयद् विजयते स श्रीलरामानुजः ॥५॥

स्वतुल्यं शिष्यं यः कमलनयनं संप्रकटयन्
जनानां सम्भूत्यै निजसरणि-सन्तानविधये।
गतोऽपि स्वं लोकं पुनरपि निजश्रीप्रतिमया
सदा वृन्दावरण्ये जयति स हि रामानुजमुनिः ॥६॥

कमलनेत्र इति प्रथितोऽप्ययं, बुधवरः प्रवरैर्निजचेष्टितैः।
नयति शीघ्रमहो स्मृति-विस्मृतिं, निजगुरुं तत एष हि वन्द्यताम् ॥७॥

अभिनन्दति रतिपूर्वं, श्रीमद्-रामानुजाख्यया विदितान्।
श्रीवृन्दावनवासी, शास्त्री वनमालिदासाख्यः ॥८॥

काशीस्थ-श्रीरामानुज-संस्कृत-महाविद्यालयस्य अष्टमवार्षिकोत्सवे
श्रीमत्सभापतिमहोदयानां संस्थापक-संवर्धक-संरक्षक-महोदयानां च कृते,
श्रीवृन्दावनस्थ-महाकवि-श्रीवनमालिदासशास्त्रिभिः प्रेषितमिदं—

अभिनन्दन-पत्रम्

निर्माणकालः—वि० सं० २००९

जयति विदितो वाराणस्यां सभापति-पीठगः
सरसहृदयो रामाज्ञाह्वः श्रुति-स्मृति-पारगः।
गुणजलनिधिः श्रौताऽभ्यासे सदैव परायणो
विमलवचसां व्याहारे वा यशस्विवरः सुधीः ॥१॥

श्रीरामानुज-दर्शित-,पथ-प्रदर्शकेष्वग्रणीरेषः।
सम्प्रति काशीविद्वत्-,परिषन्मूर्धन्यतां यातः ॥२॥

श्रीरामानुज-संस्कृत-,विद्यालय-स्थापनाप्त-पृथुकीर्तिः।
स जयति धीराधारः, श्रीलदेवनायकाचार्यः ॥३॥

स जयति मगनीरामो, रामकुमारोऽपि बाँगडोपाधिः।
श्रीनारायणदासो, ज्येष्ठो मगनीरामात्मजो जीयात् ॥४॥

श्रीगोविन्दो जयति तनुजो गोकुलोऽपि क्रमेण
भीमेऽप्यस्मिन् कलि-कुसमये दानदाता प्रधानः।
पुत्रैः पौत्रैः परिजनकुलैर्भक्तिमान् यो रमेशे
धर्मस्तम्भो जगति विदितो मूर्तिमान् यो वदान्यः ॥५॥

स सोमाणीवंशोद्भव इह हजारीमल इति
प्रसिद्धो रैदाता जयति च गदाया-धर इति।
उभावप्येतौ स्तो दृढपरिकरौ सर्वसमये
मुदा विद्योन्नत्यै धन-भवन-दानैः शिवपुरे ॥६॥

बाबूकिशोरीरमणप्रसादो, गिनोडि-नारायणदासवर्यः ।
लाहूटियोपाधि-विभूषि-छोटे-,लालश्च सत्कर्म-विधान-दक्षः ॥७॥

एते हि विद्याभवनाऽम्बुजात-,संकोचदूरीकरणांशुमन्तः ।
जीयासुरत्यद्भुत-कीर्तिजात-,विकाशिताशाः सुचिरं जयन्तः ॥८॥

श्रीरामानुजदासोऽयं श्रीवैष्णवकुलाऽग्रणीः ।
श्रीदेवनायकाचार्यः सर्वश्रेयोऽभिभागसौ ॥९॥

स्वाचार्यस्य प्रथमममलं यश्चरित्रं व्यतानीत्
पश्चाद् राधारमण-शतकं भक्तनामावलीं च ।
सर्वाश्चर्यं कविकुलमुदे श्रीहरिप्रेष्ठकाव्यं
सख्येनाढ्यं सखिसुखकरं सख्यपूर्वं सुधांशुम् ॥१०॥

श्रीमत्सभापतिमुखान् विदुषः प्रणामै-,र्विद्यालयाय धनदानपि धन्यवादैः ।
वृन्दाटवीवसतिलब्धकवित्वशक्तिः, प्रेम्णाऽभिनन्दति भृशं वनमालिदासः ॥११

वरवध्वोराशीर्वादात्मकः शुभसन्देशः

निर्माणकालः—वि० सं० २००८

सरसे सरसा-नगरे, पौत्र्या हजारीलालस्य ।
श्रीशिवकुमारजायाः, शुभो विवाहोत्सवो लसति ॥१॥

हजारीलाल-श्रीशिशु-शिवकुमारङ्गजनुषो
विवाहे मालत्याः समधिगत-शोभः शुभगुणः ।
मुरारिर्गोपीजो विपुलकरुणो राम-सहितो
हरिः श्रीराधेशो दिशतु ननु सप्रेम विजयम् ॥२॥

वसु-ख-ख-कर-गण्ये श्रीशुभे विक्रमाब्दे
मधु-मधु-सित-पक्षे द्वादशी-जीव-घस्रे ।
विलसति सरसाख्ये यः पुरे श्रीविवाहः
शुभमति वनमाली तत्र सप्रेम कुर्यात् ॥३॥

शिवेन मनसा दत्ता-मदत्तां कस्यचित् पुरा ।
गृहाण प्रेमसहितां मालिती-मालिकां हरे ! ॥४॥

भिवानी-वास्तव्यो विलसतु स नारायण इव
स्रजा मालत्येव प्रकट-निज-सौभाग्य-भरया ।
सदानन्दं कुर्यात् सुभग-वरवध्वोः सकुलयोः
सदा वृन्दारण्ये य इह वनमाली निवसति ॥५॥

वरवध्वोराशीर्वादात्मकः शुभसन्देशः

निर्माणकालः—वि० सं० २०१०

सरसे सरसा-नगरे, पौत्र्या हजारीलालस्य ।
श्रीशिवकुमारजायाः, शुभो विवाहोत्सवो लसति ॥१॥

हजारीलाल-श्रीशिशु-शिवकुमाराङ्गजनुषो
विवाहे सौभाग्याञ्चित-सुललितायाः नरवरः ।
स राधागोविन्दो वनभुवि तपोनिष्ठ-यमुना-
प्रसादो बालेन्दुर्दिशतु ननु सप्रेम विजयम् ॥२॥

ख-विधु-ख-कर-गण्ये श्रीशुभे विक्रमाब्दे
शुभगुण-बुधवारे फाल्गुने शुक्ल-षष्ठ्याम् ।
विलसति सरसाख्ये यः पुरे श्रीविवाहः
शुभमति वनमाली तत्र सप्रेम कुर्यात् ॥३॥

शिवेन मनसा दत्तां ललितामिव मोहनः ।
नारायण ! गृहाणेमां कमलां कमलेक्षण ! ॥४॥

स बालकृष्णः पुरुषोत्तमेन, नरोत्तमः सर्वगुणोत्तमेन ।
रूपेण प्रत्यक्षमिवेड्यमानः, कुर्याद् विवाहे वरकन्ययोः शम् ॥५॥

मदनमोहन-मोहन-विश्वकृच्, शिवकुमार इति प्रथिताह्वयैः ।
तव गुणैरिव मोहन ! दत्तया, ललितया ललितं सुखमाप्नुहि ॥६॥

वैकुण्ठे रमते यथा कमलया श्रीसत्यनारायणः
कैलासे रमते यथा गिरिजया श्रीशंकरः शंकरः ।
साकेते रमते यथा क्षितिजया श्रीरामचन्द्रः प्रभुः
सानन्दं रमतां तथा ललितया वृन्दावने मोहनः ॥७॥

स्वामिश्रीकृष्णबोधाश्रम-करकमलेषु सादरं समर्पितमिदम्—

अभिनन्दन-पत्रम्

निर्माणकालः—वि० सं० २०११

यं बोधं कृष्णचन्द्रः कुरुभुवि नितरां दत्तवानर्जुनाय
यं वा श्रीद्वारकायां स्वगमनसमये संदिदेशोद्धवाय ।
कालाल्लुप्तं तमागात् पुनरपि कृपया दातुकामो जनाय
यस्तस्मै ते नमः श्रीहरिमयवपुषे कृष्णबोधाश्रमाय ॥१॥

श्रीकृष्णे नित्यलीलां गतवति च कलौ वृद्धिमाप्ते नितान्तं
बौद्धेष्वृद्धिं गतेषु प्रकटितविभवः शङ्कराचार्यवर्यः ।

तस्यैवाऽभिन्नदेहो व्रजभुवि पुनरप्याशु प्रादुर्बभूव
ज्योतिष्पीठाधिपोऽयं जगति विजयते कृष्णबोधाश्रमाख्य: ॥२॥
श्रीकृष्णसम्बन्धि-विबोधजातं, ज्ञातुं जना: किं भ्रमताश्रमेषु ।
सत्यं वदामो भुवि जङ्गमं तं, श्रीकृष्णबोधाश्रममाश्रयन्तु ॥३॥
निजसनातनधर्म-रिरक्षिषा-,वशत एव हरि: स्वयमागत: ।
इति विचारपरैर्व्रजवासिभि:, सविनयं यतिराडभिनन्द्यते ॥४॥
उत्पत्तिं प्रलयं गतिं च विगतिं विद्यामविद्यां तथा
धर्मं ज्ञानविरागभक्तिपरमं वाक्यैर्ददानं नृणाम् ।
सर्वेषामुपकारकं सुचरितं संभुक्तिदं मुक्तिदं
श्रीमद्भागवतं सदा भजत रे ! श्रीकृष्णबोधाश्रमम् ॥५॥
अभिनन्दति रतिपूर्वं, श्रीकृष्णबोधाश्रमाख्यया वित्तान् ।
श्रीवृन्दावनवासी, शास्त्री वनमालिदासाख्य: ॥६॥

अखिलभारतीय-संस्कृत-साहित्य-सम्मेलनस्य द्वाविंशाधिवेशने देहल्यां पठिता: समस्यापूर्तय:—

पूर्तिकारक:—काव्यवेदान्ततीर्थ-घटिकाशतक-महाकवि-
श्रीवनमालिदासशास्त्री

निर्माणकाल:—वि० सं० २०१२

मुख्यसभापतेरभिनन्दनम्—

गिरिधर इव व्रजदेशं, रक्षति विद्वद्व्रजं प्रीत्या ।
श्रीगिरिधरशर्माऽयं, विद्वन्माणिक्यमूर्धन्य: ॥१॥

द्वितीय-सभापते प्रशस्ति:—

चिन्तामणिरिव नृणां, चिन्तामणिपदमलंकुर्वन् ।
जयति सभापतिवर्यो, देशमुखो द्वारकानाथ: ॥१॥

कविगोष्ठीसभापते: स्तुति:—

संस्कृतकविगोष्ठीपति:, कविता-रस-भाव-सारज्ञ: ।
जयति कविशिरोमणिरिव, श्रीमथुरानाथभट्टोऽयम् ॥१॥

चरमसभापतेर्वर्णनम्—

श्रीकामेश्वरनामा, श्रीदरभङ्गानरेशोऽयम् ।
जयति सभापतिवर्य:, संस्कृत-सम्मेलनान्तदिने ॥१॥

स्वनम्रताप्रकाशः—

समस्यायामस्यां यदपि न मया पूरिततनौ
रसस्याभासोऽपि प्रकटतरमाभाति सुधियाम् ।
तथाऽपि प्रीताः स्युर्मयि परिषदाप्ताः सुकवयो
नवीनोऽयं बालः कवयतुतरामित्यपि धिया ॥१॥

समस्या नं० १—देहली

पूर्वेषामपि भूभुजां गुणयुजां या राजधानी मता
सौन्दर्येण निजेन देवनगरं याऽऽस्ते तिरस्कृत्य वै ।
देवानामपि मानसं कलयितुं यां सर्वदोत्कण्ठते
पूर्वोपार्जित-पुण्यकैरिह नरैः सा दृश्यते देहली ॥१॥
नाना-दिग्भ्य उपागतैरपि नरैर्नानावचोभाषिभि-
र्नानावेष-विशेष-केश-ललितैर्नानाऽऽकृति-ग्राहिभिः ।
नाना-व्यापृतिकारिभिः परिवृता श्रीराजधानी वरा
सर्वं देशमलङ्करोति तदियं गेहं यथा देहली ॥२॥
देवर्षेर्वचसा कुबेरतनयौ यौ वृक्षतां प्रापितौ
तावुद्धर्तुमना मनाक् स्वकृपया मुक्तोऽपि प्रेम्णा हरिः ।
मात्रा बद्ध उलूखलेऽपि नितरामानम्य यां संययौ
नन्तव्या विबुधैर्बुधैश्च सततं नन्दस्य सा देहली ॥३॥
यस्यां धर्मसुतोऽपि यज्ञमकरोच्छ्रीराजसूयाभिधं
यस्यां विश्व-सभाजनीयचरणः कृष्णोऽग्रपूजां ययौ ।
यस्यां श्रीयमुनानदी च परिखाशोभां विधत्ते परां
सा पूज्या नितरां नरैरमरतां प्राप्तैरहो देहली ॥४॥

परजनैः खलु श्वेतपिपीलिका-,सुसदृशैः समयाद् बहुदूषिता ।
निजजनैर्जयहिन्दसुभाषिभि-,र्जयति साऽद्य निजा ननु देहली ॥५॥
तिलक-गांधि-जवाहरलालजि-,भटपटेल इति प्रथितैर्निजा ।
निजजनैर्जननीव विमोचिता, हसति हर्षयुताऽद्य हि देहली ॥६॥

समस्या नं० २—सम्मेलनम्

नानादेशभुवां सदा गुणभुवां शास्त्रार्थ-चिन्ताभुवाम्
सारासारविवेकनिर्णयभुवां वेदान्तविद्याभुवाम् ।
सद्विद्यायुत-वित्त-सत्कुलभुवां नैसर्गमेधाभुवाम्
सर्वेषां प्रतिभाजुषां हि विदुषामद्यास्ति सम्मेलनम् ॥१॥

वाणो भारवि-माघ-हर्ष-भवभूतिः कालिदासो हरि-
रित्येषां जयदेव-मम्मट इति प्राचां कवीनां सताम् ।
पूर्वं यादृगभूदलं यदमलं राज्ञां सभायां सताम्
काव्येष्वेव श्रुतं तदक्षिविषयं साहित्यसम्मेलनम् ॥२॥
सर्वेषां पयसां समुद्रसलिले यद्वद्धि सम्मेलनम्
श्रीमद्भागवते यथैव निगमार्थानां हि सम्मेलनम् ।
नाना-देशभुवां नृणां खलु यथा दिल्ल्यां हि सम्मेलनम्
सर्वेषां विदुषां तथैव सुधियामद्यास्ति सम्मेलनम् ॥३॥

समस्या नं० ३—यौवनं भारभूतम्—

नहि सुगुणगणानामर्जनं वा धनानाम्
कृतमपि न शुभानां संगतिर्वा जनानाम् ।
पठितमपि न यैर्वा संस्कृतं सारभूतम्
जगति हि ननु तेषां यौवनं भारभूतम् ॥१॥

श्रीतुलसी-जयन्ती पर सुनायी गयी समस्या नं० १—
"मानसराजहंसः"

निर्माणकालः—वि० सं० २०१३ श्रावण शुक्ला सप्तमी

हंसास्तु सन्ति बहवः पयसी विवेक्तुं, किंत्वस्ति शास्त्रजलधिं मतिमन्दरेण ।
निर्मथ्य सारमधिगम्य जनाय दातु-,मेकः प्रसिद्ध इह मानसराजहंसः ॥१॥
आस्वाद्य रामचरितोक्तिसुमौक्तिकानि, वाल्मीकिरूपत इह प्रथमं ततोऽपि ।
आदित्सुरेव किमु मानससमाततान, सोऽयं सदा जयति मानसराजहंसः ॥२॥
धन्यास्त एव मनुजास्तुलसीतिनाम्ना, प्रोद्घाटिते सरसि मानसनामकेऽस्मिन् ।
श्रीरामचन्द्रचरितोक्तिसुमौक्तिकानि, येषां सदा चरति मानसराजहंसः ॥३॥
हे कृष्ण ! ते चरणयोः सततं प्रणम्य, सम्प्रार्थये मुहुरिदं करयुग्मबन्धम् ।
संसारपल्वलमपास्य तवोक्तिसिन्धौ, क्रीडां करोतु मम मानसराजहंसः ॥४॥

समस्या नं० २ 'मशकदशनमध्ये दन्तिनः सञ्चरन्ति' तत्पूर्तिर्यथा—

क्व पतित इह प्राणी तत्क्षणं सीत्करोति
मदमुदितमनस्तः कानने के भ्रमन्ति ।
विदधति किमु प्रातः पक्षिणः सर्वदिक्षु
मशदशनमध्ये दन्तिनः संचरन्ति ॥५॥
मशकमपि विधत्ते यो विरिञ्चेः समानम्
विधिमपि कुरुते वा दंशतो हीनसारम् ।

इति किमपि न चित्रं चित्रकारे मुरारौ
मशकदशनमध्ये दन्तिनः संचरन्ति ॥६॥
रामेन्दुशून्यनयनैश्च मिते हि वर्षे, श्रीविक्रमार्कनृपतेस्तुलसीजयन्त्याम् ।
वृन्दावने परमहंसनिवासभूमौ, श्लोकानिमानरचयद् वनमालिदासः ॥७॥

व्रजसेवा-समिति-तृतीयोद्घाटने दीयमानम् अभिनन्दनपत्रम्—

निर्माणकालः—वि० सं० २०१३ भाद्र कृष्णा पंचमी

वृन्दावने भारतपुण्यभूमौ, क्षयाय रोगस्य क्षयाभिधस्य ।
विनिर्मितं स्थानमतीव रम्यं, विभाति सेवासमितीति नाम्ना ॥१॥
प्राणस्वरूपा हि भवन्ति यस्य, इमे प्रसिद्धाः सुमहानुभावाः ।
ललाम-गुप्तान्त-कन्हैयालाल-,श्रीहर्गुलालेति-स्वनामधन्याः ॥२॥
पूर्वं यस्योद्घाटन-,मासीत्करपात्रिकरकमलैः ।
पश्चाद् भवति चिकित्सा, वर्मा-सर्दार-कर्पूरैः ॥३॥
यस्य विलोक्य व्यवस्थां, कृतां वनवारीलालेन ।
कृता व्यवस्थाऽप्यन्या, भारत-संचालकेनाऽपि ॥४॥
यत्राऽध्यापकछात्राणां निःशुल्का रोगनिर्हृतिः ।
जायते शोभना यस्योद्घाटनं चन्द्रभानुतः ॥५॥
स्वर्गीय-रामजीदास-,सूनुना रामनाथेन ।
विशुद्धानन्द-सरस्वती-,मारवाडी-औषधालयतः ॥६॥
अधुना निर्मितिरेषां, भवनानां शोभना भाति ।
यत्र भवति बहुसेवा, जनताजनार्दनस्याऽऽशु ॥७॥
तस्योद्घाटनमद्य, महतां श्रीरामकृष्णदासानाम् ।
कृपाभाजनं कुरुते, श्रीलकृपासिन्धुदासोऽयम् ॥८॥
श्रीवृन्दावनचन्द्रः, श्रीमत्या राधया सहितः ।
मंगलमातनुतां द्राग्, सर्वेषां कर्तृ-भोक्तृणाम् ॥९॥

अभिनन्दकः— महाकविः श्रीवनमालिदासशास्त्री

गोस्वामि-श्रीव्रजभूषणाभिनन्दनम्

निर्माणकालः—वि० सं० २०१४ कार्तिक कृष्णा ४

श्रीवैश्वानरवंशपद्मतरणिः श्रीलाऽनिरुद्धात्मजः
शुद्धाद्वैत-मताब्धि-शीतकिरणो वादीभ-पञ्चाननः ।
शास्त्रार्थज्ञविशिष्टवैष्णवजनैः संसेवितः शुद्धधी-
र्गोस्वामी व्रजभूषणो विजयते वृन्दावने संसदि ॥१॥

गोलोकं तु विहाय भक्तजनतासद्भावसम्पूर्तये
प्राक् प्रागान्नु यथा निजे व्रजपदे गो-गोपसंघावृतः।
यात्राव्याजत एव किं व्रजभुवः सद्भक्तसंघावृतः
सोऽयं श्रीव्रजभूषणः पुनरपि स्वान् नन्दितुं स्वागतः ॥२॥

नानादिग्विदिगागतान्निजजनान् स्वीये प्रबन्धे स्थितान्
सौख्ये स्थापयितुं स्वयं निजसुखं हित्वाऽपि शारीरिकम्।
कष्टं सोढुमयं परिक्रमणजं यद्यप्यनर्हः कृती
माधुर्यात् तदपि स्वयं प्रथयते यौधिष्ठिरीं प्रक्रियाम् ॥३॥

अभिनन्दति रतिपूर्वं, श्रीव्रजभूषणं जाम-नगरस्थम्।
श्रीवृन्दावनवासी, शास्त्री वनमालिदासाख्यः ॥४॥

श्रीविष्णुस्वामिस्तोत्रम्

निर्माणकालः—वि० सं० २०१४ कार्तिक शुक्ला द्वितीया

यशोमत्याः प्रादुर्भवनमपि यस्योक्तमृषिभिः
पिता देवस्वामी भवति हि यदीयोऽतिमतिमान्।
स्वयं यः सौन्दर्याञ्चिततनुरभूद् भूसुरवरः
स आचार्यो विष्णुः कृपयतुतरां दैन्यजनके ॥१॥

जनाः प्रादुर्भावे पुरि तु मदुरायां मुदमगु-
स्तथा यस्य प्रेम्णा प्रमदभरपूर्णं जगदभूत्।
दधद् बालक्रीडामपि च हरिपूजामरचयत्
स आचार्यो विष्णुः कृपयतुतरां दैन्यजनके ॥२॥

ददातीष्टं विद्या गुरुवरशकाशादधिगता
प्रदातुं तां शिक्षामपठदिव साधारणजनान्।
सदा वाण्यां यस्य स्वयमपि तु वाणी निवसति
स आचार्यो विष्णुः कृपयतुतरां दैन्यजनके ॥३॥

हरिः प्रेम्णा लभ्यः प्रथयितुमिमां रीतिमिव कौ
कुमाराऽवस्थातो हरिचरणयोः स्नेहमकरोत्।
ददर्श स्वप्रेम्णा हरिमपि च प्रत्यक्षमिह यः
स आचार्यो विष्णुः कृपयतुतरां दैन्यजनके ॥४॥

किशोरावस्थायामपि तु प्रबलां साधनविधां
विलोक्योत्कण्ठन्ते सकलमनुजा यस्य चरितम्।
ग्रहीतुं चेच्छन्ति प्रकटममलं साधकहितं
स आचार्यो विष्णुः कृपयतुतरां दैन्यजनके ॥५॥

व्रजानन्दिन् ! नन्दीश्वरदयित ! हे नन्दतनय !
यशोदासूनो ! हे प्रणतजनवात्सल्यजलधे ! ।
हरिप्राप्त्यर्थं यः प्रतिपलमिमां वाचमवदत्
स आचार्यो विष्णुः कृपयतुतरां दैन्यजनके ॥६॥

हरेराज्ञां नीत्वा तदनु जनयित्रीजनकयो-
र्ययौ वेदव्यासं सततबदरीवासनिरतम् ।
रहस्यं यो व्यासात् प्रथममगमद् व्यासवचसां
स आचार्यो विष्णुः कृपयतुतरां दैन्यजनके ॥७॥

ततस्तत्त्वं सर्वं ननु शुकमुखाद् भागवतगं
गृहीत्वा दीक्षा तु स्वगुरु-त्रिपुरारेरधिगता ।
हरिप्राप्तेर्येन प्रकटतररीतिं प्रथयता
स आचार्यो विष्णुः कृपयतुतरां दैन्यजनके ॥८॥

विना सर्वत्यागं भवति भजनं नो मधुरिपो-
रितित्यागं कृत्वा सकलविषयाणां विरतिमान् ।
हरौ गाढं रागं प्रकटमकरोद् यः सविनयं
स आचार्यो विष्णुः कृपयतुतरां दैन्यजनके ॥९॥

बभूवुर्यस्योक्त्या हरिपदरता नास्तिकजना
विवादान्तर्मग्ना रसमयहरेर्वादनिरताः ।
विनिर्जित्योवाच प्रणयसरणिं शुष्कमनुजान्
स आचार्यो विष्णुः कृपयतुतरां दैन्यजनके ॥१०॥

स्वकं शुद्धाद्वैतं मतमखिलवेदान्तविदितं
समस्तं सद्रीत्या निजशरणमाप्तान् गमयितुम् ।
ससूक्तं यो भाष्यं शुकजनकसूत्रेष्वरचयत्
स आचार्यो विष्णुः कृपयतुतरां दैन्यजनके ॥११॥

तथा गीताभाष्यं सरलसरसं चोपनिषदां
जगादाऽन्यान् ग्रन्थान् प्रकृतिसरलान् भक्तिसरसान् ।
नृणां भक्तिस्थित्यै पुरुकरुणया यस्तु निजया
स आचार्यो विष्णुः कृपयतुतरां दैन्यजनके ॥१२॥

समेषां तीर्थानामपि च वनयात्रां रचयता
तथा वृन्दारण्ये रसिकजनचेतःसु वसता ।
कृतो वासो येन प्रथितयशसा शान्तवचसा
स आचार्यो विष्णुः कृपयतुतरां दैन्यजनके ॥१३॥

स्वसिद्धान्तस्थित्यै प्रथितपरिपाटीमनुसरन्
प्रधाने पीठेऽग्रचं निजमनुचरं यस्तु निदधे ।
तथा सर्वे शिष्याः प्रमदभरमापुर्यदुदितैः
स आचार्यो विष्णुः कृपयतुतरां दैन्यजनके ॥१४॥

सदा स्षादं स्वादं मधुरिपुकथा-कीर्तनरसं
प्रियैर्भक्तै रात्रिंदिवमपि च यो नैव बुबुधे ।
समस्तैः सद्भावैर्वपुरतितरां यस्य शुशुभे
स आचार्यो विष्णुः कृपयतुतरां दैन्यजनके ॥१५॥

इतीत्थं संसारे हरि-भजनरीतिं प्रकटयन्
निजं चाचार्यत्वं प्रकटमिह सार्थं सफलयन् ।
हरेः पार्श्वं योऽगाद् हरिचरणसेवामभिनयन्
स आचार्यो विष्णुः कृपयतुतरां दैन्यजनके ॥१६॥

इमं विष्णुस्वामिस्तवमतितरां भक्तिसहितो
हरेरग्रे नित्यं पठति मनुजो यः सविनयम् ।
हरिः प्रीतस्तस्मिन् भवति नितरां धाम च निजं
प्रदत्ते चैतस्मै निजभजनमाचार्यकृपया ॥१७॥

इति नुतिपरवाक्यपुष्पहारै-,र्व्यतनुत साञ्जलि विष्णुस्वामिपूजाम् ।
हरिपदनिरतो वसंश्च वृन्दा-,वनभुवि श्रीवनमालिदासशास्त्री ॥१८॥

श्रीविष्णुस्वामिनां मत-संक्षेपः—

विष्णुस्वामिमते व्रजेशतनयः श्रीब्रह्म सच्चिन्मयः
शुद्धेच्छावशतो जनाननुगतः प्रादुर्भवन् गोकुले ।
मुक्तिर्दास्यमितीरितं मधुरिपोस्तत्साधकोऽनुग्रहः
स्वाऽविद्यारहिता हरेरनुचरा ब्रह्मात्मकं सज्जगत् ॥१॥

श्रीहरिदासस्वामिनां मत-संक्षेपः—

आराध्यो भगवान् निकुञ्जसदनस्तद्धाम वृन्दावनं
रम्या सा समुपासना ललितया याऽऽचार्यया कल्पिता ।
मुक्तिः श्रीहरिपादयोरधिगतिः प्रेमैव तत्साधनम्
इच्छाद्वैतमिदं मया निगदितं श्रीहारिदासं मतम् ॥२॥

द्वयोरपि मत-प्रदर्शक :—श्रीवनमालिदासशास्त्री

वि० सं० २०१४ चैत्र कृष्णा तृतीया

महात्मा गान्धी प्रशस्तिः

निर्माणकालः—वि० सं० २०१६

आर्यात्रयम्—

जयति महात्मा गान्धी, विमला विपुला च यस्य सत्कीर्तिः ।
लतेव वृक्षस्योपरि, भुवनं व्याप्योर्ध्वमारूढा ॥१॥
आरूढो देवाना-,मपि हृन्मञ्चेषु सर्वथोच्चेषु ।
अपि बहु ऋजुताधारी, धीरो जनकः स्वतन्त्रता-देव्याः ॥२॥
कारुण्यामृतवर्षी, बुधजनहर्षीव वर्षुको मेघः ।
हरिजनहृदयाकर्षी, स्वाधारः सर्वजनतायाः ॥३॥

शिखरिणी—

विना शस्त्रैरस्त्रैः क्वचिदपि न केनापि विजयः
कृतश्चार्वाचीनां विजयपरिपाटीं प्रकटयन् ।
महात्मा गान्धी तु प्रथितसुयशाः शान्ति-सुमना
अहिंसास्त्रेणाराज्जयति निखिलान् गौरवपुषः ॥४॥

धन्यवाद-पत्रम्

निर्माणकालः—वि० सं० २०१६ कार्तिक शुक्लपक्ष

यत्रेश्वरं मारुति-मन्दिरं वरं, यद्दक्षिणे दक्षिणदिक्पतेः स्वसा ।
स्वर्लैर्गृहैरेव सुशोभते च या, विराजते सा हरिदासदासपूः ॥१॥
यत्राऽऽनन्दस्वरूपो निवसति नितरां साधुरानन्ददासो
यस्यैवाऽन्वर्थनाम्नः परम-करुणया वत्सरे वत्सरेऽपि ।
साधूनां सङ्गहेतोः प्रवहति मधुरा हर्षदाऽऽनन्दधारा
यस्यैवाऽहं कृपायाः सकलसुखदमानन्दपूरं वहामि ॥२॥
येनाऽऽहूता महान्तः सरसहरिकथा-माधुरीमावहन्तः
सर्वानानन्दयन्तः स्वमधुरवचनैरासते संसदन्तः ।
हार्दं संनाशयन्तः सकलमपि तमः कान्तिमन्तः किरन्तो
रामानन्देन पूर्णो निरवधि जयतात् सोऽमानन्ददासः ॥३॥
रस-शशि-ख-कर-परिमिते, विक्रमवर्षे च कार्तिके शुक्ले ।
योऽयमुत्सवश्चलति, तस्येमे कार्य-कर्तारः ॥४॥
प्रधानवक्ता चतुरः शुकोक्ते-,र्महाकविः श्रीवनमालिदासः ।
गोविन्ददासः खलु पाठकर्ता, श्रीरामजी-विज्ञवरो वरोक्तेः ॥५॥
श्रीरामदासः करहा-निवासी, विराजते मानस-तत्त्ववेत्ता ।
विराजतेऽसौ रघुनाथदासः, सत्पूजको मारुति-मन्दिरस्य ॥६॥

श्रीनेकरामो हरिनामवक्ता, श्रीसूर्यभानुश्च रमेशनत्थी।
दिलीपसिंहो हरिदासवासी, ज्योतिःप्रसादो गहरा-निवासी ॥७॥
श्रीनारायणदासनर्तकमणिर्नागोम्प्रकाशोत्तमाः
श्रीमद्राघवदास-सूदकवरो वज्राङ्गदासो महान्।
भक्तः श्रीखुशियाल-सद्गिरिधरावोङ्कारहोलीगिरी
श्रीबद्री च निहालसिंह-जसवन्तौ रामसिंहाऽत्तरौ ॥८॥

हरगोविन्दो भवन-पुरस्थः, श्रीरतिरामो महावनस्थः।
राममन्दिरस्याशाबालः, रहलई-वासी गणेशलालः ॥९॥
अध्यापकानां खलु यस्तु मन्त्री, बेरी-निवासी बुधखूबिरामः।
सम्पादकः सैनिक-पत्रकस्य, पुत्रश्च तस्यैव विदोम्प्रकाशः ॥१०॥
श्रीरामदासः खलु प्रेमदासः, श्रीचेतरामः खलु यस्तु नेता।
अन्ती वसन्ती च महासुदेवो, वाक्कीलनी श्रीजगदीश-शान्ती ॥११॥
श्रीरामरक्षादि-महानुरागै-,र्द्विविंशति-ग्रामनिवासि-भक्तैः।
सेवा कृतैभिस्तनु-वाङ्-मनोभिः, सर्वेऽप्यमी धन्यपदाधिभाजः ॥१२॥

श्रीललिताविनयलता-प्रेमलतयोः शुभसम्मतिः

निर्माणकालः—वि० सं० २०१५ अधिक श्रावण ५

ग्रन्थेऽस्मिन् ललितादिनामललिते भाषात्रयोट्टङ्किते
भाषाकाव्यमयेऽपि भाति विमलाऽनुप्रासबाहुल्यता।
छन्दोरीतियुता विशिष्टकविता नव्योपमा-सत्यता
राधावल्लभविज्ञ-विज्ञतमता तारुण्यतामागता ॥१॥

काव्ये प्रेमलताह्वये तु सफला प्रेम्णो लता दर्शिता
भाषायां जनमात्रबोध्यतरता भावप्रसूनच्छटा।
केषां नो मनसो विलास इह भो ! ग्रन्थद्वये निर्मले
तस्माच्छ्रीवनमालिदासकविना तेने स्वयं सम्मतिः ॥२॥

श्रीस्वामि-विवेकानन्दाभिनन्दनम्

निर्माणकालः—वि० सं० २०१६

अद्वैतं प्रतिपादयन्ति च विशिष्टाद्वैतमेवाऽपरे
द्वैताद्वैतमथापरे च विबुधा द्वैतं तु मध्वानुगाः।
भेदाभेदमचिन्त्यमन्ति च विवेकानन्दजन्मोत्सवे
सर्वेषां प्रतिभाजुषां हि विदुषां वेदान्तसम्मेलनम् ॥१॥

जयति विवेकानन्दो, भारतभूमेः शिरोरत्नम् ।
विजयपताका यस्य, दोधूयन्ते विदेशेऽपि ॥२॥

पताकामत्युच्चां विजयजनितां भारतभुवो
विदेशे यस्तेने निजविभवजातं प्रकटयन् ।
विचित्रैर्विज्ञानैरहरदभिमानं स हि मुनि-
र्विवेकानन्दाख्यो जयति चिरसौभाग्यमहिमा ॥३॥

अभिनन्दति रतिपूर्वं, श्रीलविवेकानन्दाख्यया विदितान् ।
श्रीवृन्दावनवासी, शास्त्री वनमालिदासाख्यः ॥४॥

श्रीकालिदास-जयन्ती-महोत्सवः

निर्माणकालः—वि० सं० २०१६

सकलगुणविशिष्टां यस्य सत्काव्यमालां
दधदिह सकलोऽयं लोकजातो विभाति ।
भुवनमति-गतं सत्सौरभं यस्य कीर्तेः
स जयति कविवर्यः कालिदासो महात्मा ॥१॥

अवन्तिकापुरीपतिं प्रणम्य भूतभावनम्
गुरुं हरेरथापि सादरं प्रणम्य दण्डवत् ।
सभापतेरनन्तरं सभागतान् विचक्षणान्
प्रणम्य नम्रतां गतो व्यनज्मि भावनां निजाम् ॥२॥

अनुपमाभिरहो कृतिभिर्निजै-,रुपकृतं त्विदमेव जगच्चिरम् ।
बहु महाकविना खलु येन तं, क इह विस्मृतिमार्गमुपानयेत् ॥३॥

येन सांस्कृतिका वृक्षाः म्लाना संजीविता इव ।
पुष्पतां फलतां नीताः कस्तं विस्मर्तुमीश्वरः ॥४॥

यत्सत्कृति-रत्नानां, मूल्यं नास्मन्मतेर्विषयः ।
परमिह सादरधारण-,मेवास्तां कृत्यमस्माकम् ॥५॥

यस्यां श्रीकृष्णनामा स परमपुरुषो लोकलीलानुसारं
सारं सच्छास्त्रजातं सकृदपि गदितं प्राप सान्दीपनेस्तु ।
यस्यां मूर्तो व धर्मो नरपतिरभवद् विक्रमादित्यनामा
शिप्रातीरे च यस्यां हरिगुरुमहितो विश्वविद्यालयोपि ॥६॥

तस्यामेवाऽद्य पुर्यां जगति सुविदिते विश्वविद्यालयेस्मिन्
श्रीलश्रीकालिदासाऽभिध-कविसुमणेर्जायते सज्जयन्ती ।

अस्याः सत्प्रेरकोऽयं रविरिव जयतात् सूर्यनारायणाख्यो
जीयान्नेत्राधिरूढो दिशि दिशि विदितो भारतस्यापि मंत्री ॥७॥
हरिगुरुविद्यालय इव, शिक्षादाने समर्थोऽयम् ।
भवतादित्याशासे, विक्रमविद्यालयो जगति ॥८॥
देशे देशे यद्यपि, जयन्तीयं कालिदासस्य ।
कृतापि शोभां भजते, विमलेऽस्मिन् भारते त्वधिकाम् ॥९॥
कालिदास-जयन्तीय जयन्ती भेदभावनाम् ।
एकसूत्रे हि बध्नातु सर्वेषां हृदयानि नः ॥१०॥

वरवध्वोराशीर्वाददात्मकः शुभसन्देशः

निर्माणकालः—वि० सं० २०१६

गोपाल ! गोपाल-मनोज्ञवेष !, निःशेषिताऽशेषवचोविशेष ! ।
गार्हस्थ-धर्मे पदमादधानः, प्रेम्णा त्विमां प्रेमवतीं गृहाण ॥१॥
शिवेन मनसा दत्तां श्रीगोपाल-विचक्षण ! ।
आचार्य-वासुदेवस्य तनयां रक्ष सर्वतः ॥२॥
श्रीगोवर्धन-वासिनां गुणवतां शोभावतां धीमतां
नन्दग्राम-निवासिभिर्गतगुणैः सम्बन्धमातन्वताम् ।
सेवाऽस्माभिरहो न तत्रभवतां सम्पादिताऽल्पीयसी
क्षन्तव्यास्त्रुटयो निरन्तरगुणप्रेक्षैरसाधारणैः ॥३॥
सम्बन्धिनस्तुल्यधियो भवन्ति, न हीनप्रज्ञाः प्रभवन्ति लोके ।
वयं कृता हीनधियो भवद्भिः, सम्बन्धिनः सोऽपि चिराय भूयात् ॥४॥
गिरिराज-प्रसादेन सम्बन्धोऽयमजीघटत् ।
गिरिराज-प्रसादः स स्वकुले वर्ततां सदा ॥५॥
रस-कु-ख-कर-गण्ये विक्रमादित्यवर्षे
बुधयुत-हरितिथ्यां कार्तिके शुक्लपक्षे ।
रसवति सुविवाहे प्रेम-गोपालयर्वै
शुभमति वनमाली तत्र सप्रेम कुर्यात् ॥६॥
वैकुण्ठे रमते यथा कमलया श्रीसत्यनारायणः
कैलासे रमते यथा गिरिजया श्रीशंकरः शंकरः ।
साकेते रमते यथा क्षितिजया श्रीरामचन्द्रः प्रभुः
गोपालो रमतां तथा गिरिवरे श्रीप्रेमवत्याऽनया ॥७॥

श्रीकमलापति-त्रिपाठि-महोदयानां अभिनन्दन-पत्रम्

निर्माणकालः—वि० सं० २०१७ भाद्र कृष्णा त्रयोदशी

कमलापतित्रिपाठी, कमलापतिरिव हितो नृणाम् ।
स जयति धीराधारः, शिक्षामन्त्री समीचीनः ॥१॥

जयति विदितो वाराणस्यामलंकृतजीवनः
सरसहृदयः शिक्षामन्त्री विचारपरायणः ।
गुणजलनिधिर्नम्रः कम्रः श्रुतिस्मृतिपारगो
विमलवचसां व्याहारे वा यशस्विवरः सुधीः ॥२॥

वृन्दारण्यमुपेत्य सादरमसौ निम्बार्कविद्यालयं
दृष्ट्वा नूतनरीतिविद्विरचितं शिल्पक्रियाशोभनम् ।
विद्वद्भिः परिपूरितं बहुविधैश्छात्रैरनल्पैर्युतं
तस्योद्घाटनमाचरन् विजयते विज्ञस्त्रिपाठी वशी ॥३॥

श्रीनिम्बार्कमठाधिकारिभिरयं सम्माननीयो महान्
सामग्रीभिरनल्पशिल्परचितैरर्घ्यादिभिः सादरम् ।
अस्माभिस्तु वचोऽनुरूपकुसुमैर्वाङ्मात्र-सद्वैभवै-
स्तैरेवायमसौ प्रसीदतुतरां सद्भावविद्विज्जनः ॥४॥

अभिनन्दति रतिपूर्वं, शिक्षागृहमन्त्रिणं विदितम् ।
श्रीवृन्दावनवासी, शास्त्री वनमालिदासाख्यः ॥५॥

श्रीभास्करानन्दसरस्वतीकृतिप्रशस्तिपराः श्लोकाः—

निर्माणकालः—वि० सं० २०१८ मार्गशीर्ष कृष्णा द्वितीया

श्रीवृन्दावनवासिभिर्बुधवरैर्यद्यप्यहं प्रेरितः
श्रीचैतन्यमहाप्रभोः सुचरितं वक्तुं सुराणां गिरा ।
पद्यैर्हृद्यतमैस्तथापि सुतरां माधुर्यधाराधरैः
श्रीमद्भिर्विरचय्य तत्सुचरितं भारोऽपनीतो मम ॥१॥

श्रीकृष्णदासं कविराजराजं, नमाम्यभीक्ष्णं नमनीयपादम् ।
न यस्य जिह्वा हरिभक्तिहीनां, मनागपि स्वां कवितां ततान ॥२॥
तं भास्करानन्दमहाकविं नुमो, यः कृष्णदासाङ्कितगौरलीलाम् ।
प्रदर्शयामास बुधात्ममञ्चे, मनोहरैः श्लोकनटैर्जनेभ्यः ॥३॥
यः कृष्णदासः कविराजराज-,श्चैतन्यलीलामृतमाततान ।
भूयस्तदास्वादयितुं स सर्वान्, श्रीभास्करानन्दमुखेन नूनम् ॥४॥
प्रोवोच वाचा सुरसत्तमानां, प्रसादमाधुर्यमयैः सुपद्यैः ।
श्रीभास्करानन्दकृतिं विलोक्य, प्रतीयते मे हृदि निर्विकल्पे ॥५॥

श्रीभास्करानन्दमहाकवेस्तु, श्रीक्षेत्रनाथाऽभिधशिष्यवर्यः ।
गुरोरभावे गुरुणा स तुल्यो, ममापि भावेन स बन्धुवर्यः ॥६॥
श्रीभास्करानन्दसरस्वतीकृतिः, कृती जनो यां सकलः प्रशंसति ।
सैषा सदा मोदवहा मनस्विनां, मनःसु भूयाद् हरिभक्तिमिच्छताम् ॥७॥
इति मयाप्यनुभूय विलिख्यते, कृतिरियं न मुधैव प्रशस्यते ।
इति विचार्य विचारचणा जना, अपि पठन्तु सुभास्करभाषितम् ॥८॥
इति नुतिपर-सत्यवाग्विलासै-,र्व्यतनुत भास्कर-भाषित-प्रशस्तिम् ।
हरिपदनिरतो वसंश्च वृन्दा-,वन भुवि श्रीवनमालिदासशास्त्री ॥९॥

साहित्याचार्य-परीक्षायामन्तिमवर्षे प्रश्नाः तेषामुत्तराणि च यथा—

श्रीवनमालिदासशास्त्रिसंकलितानि

निर्माणकालः—वि० सं० २०२० समाप्तौ

प्र०—परीक्षाभवनं व्याप्तं परीक्षार्थिनिरीक्षकैः ।
गद्यं वा पद्यबन्धं वा समाश्रित्योपवर्णय ॥

उ०—मौनं समाश्रित्य यथैकवृत्तिभी, रहः स्थितैर्योगरतैर्हरीक्षकैः ।
तथा परीक्षार्थि-निरीक्षकैरहो, व्याप्तं परीक्षाभवनं विलोक्यताम् ॥
कुयोगिनो ये नियमेषु न स्थिराः, सुयोगभ्रष्टा हि यथाऽन्तरायकैः ।
तथा परीक्षार्थिजना निरीक्षकै-,रहो क्रियन्तेऽत्र परीक्षया च्युताः ॥

प्र०—अनावृष्ट्याऽतिवृष्ट्या वा सीदतां कृषिजीविनाम् ।
वर्णनीया दशा सम्यगार्ययाऽनुष्टुभाऽथवा ॥

उ०—अनावृष्ट्या तु शुष्यन्ति क्षेत्राणि कृषि-जीविनाम् ।
धनं बलं क्षयं याति, ऋणं दैन्यं च वर्द्धते ॥
क्षेत्रं गृहं विनश्यति, पशवः सीदन्ति जीर्यते यानम् ।
अतिवृष्ट्या कृषकाणां, देहः कृशतामनारतं याति ॥

प्र०—मालिन्या वाऽथ शालिन्या धेनु-सन्ध्ये निरूपय ।
उपमारूपकोत्प्रेक्षाऽन्यतमालंक्रियोज्वले ॥

उ०—प्रातः सम्यग् धार्मिकैः पूजयित्वा, ध्याता पश्चादागमार्थे विसृष्टा ।
पादैस्तुर्यैर्यामरूपैरटित्वा, धेनुः सन्ध्येवाऽऽगता भाति सायम् ॥

प्र०—वीरम्मन्यस्य भीरोस्तु सुहृद्गोष्ठ्यां विकत्थनम् ।
वीरहास्यानुभावानां साहाय्येन प्रदर्श्यताम् ॥

उ०—एकाकिना मया सर्वभटानामिह संगरे ।
करिष्यते स्वहस्ताभ्यां मशकानामिवार्दनम् ॥

वीरम्मन्यैर्भवद्भिस्तु, स्थीयतां भो ! गृहान्तरे ।
मया करिष्यते सर्वं विष्णुनेव जगत्त्रयम् ।।

प्र०—त्वया श्लेषेण वर्ण्येतां यद्याचार्यत्वमिच्छसि ।
केनापि छन्दसाऽनुष्टुबितरेण वृषाकपी ।।

उ०—वृषस्थितौ द्वावपि चक्रधारिणौ, विभूषितौ द्वावपि भूरिभूतिभिः ।
प्रकीर्तितौ द्वावपि शंकराविति, तौ रक्षतां मामभितो वृषाकपी ।।

प्र०—गंगाविषयिणीं काञ्चिद् दर्शयापह्नुतिं शुभाम् ।
येनाऽलंकारिकत्वं ते साहित्ये संपरीक्ष्यताम् ।।

उ०—नेयं गंगा हरेः किन्तु कीर्तिस्त्रैलोक्यपावनी ।
मूर्त्ता भ्रमति लोकेषु त्रिषु नित्यं निरन्तरम् ।।

'मृगतृष्णाम्बु शीतलाम्'—इति पंचम-समस्यायाः पुनः पूर्तिर्यथा—

मरीचिका च का प्रोक्ता मेघपुष्पं च किं स्मृतम् ।
जलं च कीदृशं प्रोक्तं मृगतृष्णाम्बु शीतलम् ।।

अधो निर्दिष्टाः समस्याश्च पूरणीयाः

समस्या—"शेते करी मशकपादविपादिकायाम्"

पूर्तिः— कृत्वा सुभोजनमु किं कुरुते सतन्द्रो
मत्तश्च संगरमुखे क उ बृंहितानि ।
रेणुः क्व वा लगति भोः परमाणुरूपः
शेते करी मशकपादविपादिकायाम् ।।

समस्या—"सोऽमृतत्वाय कल्पते"

पूर्तिः— विरक्तिर्यस्य गेहादौ रक्तिश्च परमेश्वरे ।
स्वाचारे यः स्थितो मर्त्यः सोऽमृतत्वाय कल्पते ।।

समस्या—"निराधारे व्योम्नि प्रचलति रथो वाजिरहितः"

पूर्तिः— रथेनादित्योऽपि व्रजति ननु सप्ताश्वकयुजा
मृगस्थश्चन्द्रोऽपि द्रवति भगवच्छासनपरः ।
तदास्तामाश्चर्यं कलय शिशुभिः कर्गलकृतो
निराधारे व्योम्नि प्रचलति रथो वाजिरहितः ।।

समस्या—"न कल्पते कल्पलता फलाय"

पूर्तिः— न यस्य चित्तं स्थिरतामवाप्तं, विचारयुक्ता नहि शेमुषी च ।
चरित्र-हीनाय जनाय तस्मै, न कल्पते कल्पलता फलाय ।।

समस्या—"मृगतृष्णाम्बु शीतलम्"

पूर्तिः— हृदि येषां न वैराग्यं तप्ता ये विषयाग्निना ।
तेषां कृते लगत्येव मृगतृष्णाम्बु शीतलम् ॥

समस्या—चण्डांशुचन्द्रतडितो लघवः स्फुलिङ्गाः"

पूर्तिः— कोटीन्दु-सूर्य-तडितां गणतोऽतिभायुक्
कृष्णेन योऽर्जुनकृते स्वक-विश्वरूपः ।
प्रादर्शि तस्य पुरतः खलु दिव्यमूर्त्ते-
श्चण्डांशु-चन्द्र-तडितो लघवः स्फुलिङ्गाः ॥

काशीवासिनां श्रीगोपालशास्त्रिणामभिनन्दनम्

निर्माणकालः—वि० सं० २०२०

श्रीमत्के हृदये सदा सरलता दिग्धा वरीवृत्यते
सैवेयं रचनान्तरे तव विभो ! मूर्त्ता दरीदृश्यते ।
सारग्राहिभिरेव सर्वमनुजैः शीघ्रं जरीगृह्यते
प्राशस्त्यं कथयन् ममापि मुदितं चेतो नरीनृत्यते ॥१॥

नो विना काशिकाकारमेतादृशी, क्वापि दृष्टा मया व्याकृतेः पद्धतिः ।
याऽऽर्जवाढ्या शुभा शास्त्रिगोपालजे, पाणिनीयप्रबोधेऽल्पके पुस्तके ॥२॥

'मितं च सारं च वचो हि वाग्मिता', हर्षोक्तिरेषा सफलाऽत्र दृश्यते ।
अतो बुधाः ! पाठयताऽऽत्मपाठकान्, प्रबोधमेतं लघु संस्कृतोक्तये ॥३॥

ग्रन्था मया व्याकरणस्य सर्वे, दृष्टा परं दृष्टिपथं न याता ।
निर्माण-शैली खलु संस्कृतस्य, प्रयोग-शैली च प्रयोग-सिद्धेः ॥४॥

पाणिनीय-प्रबोधे तु सैव दृष्टा पदे पदे ।
यां विलोक्यैव विदुषां प्रसीदतितरां मनः ॥५॥

पाणिनीयप्रशस्तिं विलोक्यैव मे, मानसेऽयं विचारो दृढो जायते ।
उद्दिधीर्षुः कृतिं स्वां पुनः पाणिनिः, शास्त्रि-गोपालरूपेण किं प्राभवत् ॥६॥

अभिनन्दति रतिपूर्वं, श्रीयुतगोपालशास्त्रिणो विबुधान् ।
श्रीवृन्दावनवासी, शास्त्री वनमालिदासाख्यः ॥७॥

उत्तरप्रदेशीय-सर्वसंस्कृत पाठशालानां प्रधाननिरीक्षकस्य एम० ए० व्याकरणाचार्यस्य श्रीप्रकाशचन्द्र-गौडस्य अभिनन्दनरूपा-प्रशस्तिः—

निर्माणकालः—वि० सं० २०२१ भाद्र शुक्ला नवमी

जयत्ययं भारतभूमिरत्नं, प्रकाशचन्द्राभिध-पूर्णचन्द्रः ।
प्रकाशयत्येष सदैव लोकं, स केवलं द्वित्रदिनानि रात्रौ ॥१॥

नहि गौडान्वयकुमुदं, केवलमेष प्रकाशयञ्जयति ।
अपि तु कुमुदवनमात्रं ब्राह्मणवंशस्य रञ्जयञ्जयति ॥२॥
निरीक्षकः संस्कृतपाठशाला-,व्रजस्य यो मुख्यतमोऽस्ति तस्मै ।
प्रकाशचन्द्राह्व-महोदयाय, समर्पितः सख्यसुधाकरोऽयम् ॥३॥
श्रीमत्प्रकाशविधु-गौड-कराब्जयुग्मे, पद्यावली निनिहिता किल टीकयित्रा ।
दृष्ट्वैव सादरमिमां च निजाशिषा मां, पूर्णायुषं स कुरुतां वनमालिदासम् ॥४

प्रकाशचन्द्रसंज्ञस्य विदुषः करकंजयोः ।
समर्पितमिदं कर्त्रा शतकद्वयमादरात् ॥५॥
प्रकाशचन्द्रसंज्ञस्य विदुषः कण्ठसीमनि ।
समर्पिता गुम्फयित्रा श्रीभक्तनाममालिका ॥६॥
गौडाऽन्वयावतंसस्य विदुषः करकंजयोः ।
प्रकाशचन्द्र-संज्ञस्य काव्यमेतदिहार्पितम् ॥७॥

श्रीमन्मध्वाचार्यपीठाधीश्वर-उडुपी-महाशूरस्थ-अनन्त-श्रीविभूषित-श्रीस्वामि-विद्यामान्यतीर्थवर्य-वर्यकरकमलेषु सादरं समर्पितम्

प्रशस्ति-पत्रम्

निर्माणकालः—वि० सं० २०२१ चैत्रकृष्णा सप्तमी

श्रीमध्वाचार्यवर्यान्निजहृदि विशदे भावयित्वा नितान्तम्
श्रीकृष्णानन्ददामान् सखिरसविभवाँल्लब्धवर्णान् गुरून् स्वान् ।
श्रीविद्यामान्यतीर्थाह्वय-निखिलगुरोर्मध्वपीठाधिपस्य
श्रीवृन्दारण्यमध्ये कतिपयसुपदैः कीर्तिलेशं ब्रवीमि ॥१॥
निजहृदि विनिहितया यो, निरवधि निरवद्यविद्यया मान्यः ।
अत इह सार्थकनामा, विद्यामान्यो यतिर्जयति ॥२॥
विद्याभासुरभूसुरान्वयजनिः सौम्याकृतिः सत्कृति-
र्मायावादनिशानिरासतरणिर्भक्त्यम्बुधेश्चन्द्रमाः ।
मिथ्यादृष्टिमहीध्रपक्षभिदुरोऽशान्ताय शान्तिप्रदो
विद्यामान्यजगद्गुरुर्विजयते श्रीमध्वपीठाधिपः ॥३॥
यो नास्तिकानपि च सास्तिकतां निनाय, यस्तर्करातिभिरलं विमुखाञ्जिगाय ।
श्रीमध्वमार्गमवनौ विमलं वितन्वन्, भक्तिप्रचारणरतः किल सोऽयमास्ते ॥४
भुवि भ्रामं भ्रामं श्रुतिशरचयैर्नावस्तिकमृगान्
विधत्ते पापाह्वाद् भयदवनतो धर्मवनगान् ।
न यत्राऽऽस्ते भीतिः शमनमृगयुत्यक्तशरजा
स विद्यामान्याह्वो यतिपतिजस्रं विजयते ॥५॥

श्रीराधिकामाधवभालयेन, श्रीकृष्णचैतन्यकृपालयेन ।
गोपालभट्टाह्वमहोदयेन, यस्यास्ति सम्बन्धवरः प्रगाढः ।।६।।
यदि भवानुदितो न भवेद् रवि-,र्नवनवैः किल भक्तिमरीचिभिः ।
क इह मध्वमुखादिमहात्मनां, भवति पुस्तकपद्म-विकाशकः ।।७।।
वैराग्यं विभवे त्रिविष्टपभवे भक्तिर्यशोदाभवे
जिह्वामञ्चमुरीकरोति सततं विद्यानवद्यानटी ।
शंकापंकनिराकृतिः सुमधुरैर्वाग्वारिभिः सादरं
विद्यामान्यमहाप्रभोर्वदत भोः किं किं न लोकोत्तरम् ।।८।।
श्रीराधारमणान्तिके व्रजभुवि श्रीदिव्यवृन्दावने
यस्य स्वागमनेन चेतसि महान् हर्षः समेषां नृणाम् ।
यस्य श्रीवचनामृतेन नितरां शंकाकलंको गत-
स्तस्य श्रीलजगद्गुरोरवनताः सुस्वागतं कुर्महे ।।९।।
इति नुतिपरवाक्यपुष्पहारै, र्व्यतनुत मध्वमुनेः पदस्थपूजाम् ।
हरिपदनिरतो वसँश्च वृन्दा-,वनभुवि श्रीवनमालिदासशास्त्री ।।१०।।

विवाहसमये वरवध्वोरधिकार-वचनानि

कन्यां प्रति वर-वचनानि—

निर्माणकालः—वि० सं० २०२२ चैत्र कृष्णा तृतीया

विनाऽनुज्ञां मे त्वं व्रजसि नहि चेत् कह्युपवनं
तथा साध्वी भूत्वा निज-भवन-कृत्यं च कुरुषे ।
अनाहूता पित्रोरपि गृहमये ! यासि न तदा
प्रिये ! वामाङ्गे मे निवस सततं मङ्गल-युता ।।१।।

समा द्वन्द्वे स्यास्त्वं धरसि यदि धैर्यं स्वमनसि
विपत्तौ स्याः सार्धं निजगृहजनानामपि सदा ।
सदा सेवाकार्ये भवसि विनियुक्ता यदि तदा
प्रिये ! वामाङ्गे मे निवस सततं मङ्गल-युता ।।२।।

कुचैलं कद्रूपं पतिमपि मनस्युज्ज्वलतरं
विजानीषे रूपान्वितमपि परं रूपहितम् ।
सधर्मं वृद्धानां मतमनुसरेश्चेदपि तदा
प्रिये ! वामाङ्गे मे निवस सततं मङ्गल-युता ।।३।।

सदा मम मनोऽनुगा भवसि गेहकार्ये रता
नवाङ्क-गणना-समा यदि रतिस्तवाऽऽस्तां मयि ।

यशः-सुखकरी द्वयोरपि कुले भवेरावयोः
प्रिये ! वश तदा मम त्वयि शुभे तु वामाङ्गके ॥४॥

मनसा वचसाऽपि कर्मणा, पतिसेवा सुखदा कुलस्त्रियाः ।
इति चेतसि चेत् सुधारणा, सुभगे ! तर्हि समेहि मेऽन्तिके ॥५॥

वरं प्रति कन्या-प्रार्थना-वचनानि

आज्ञां धृत्वा शिरसि समुदा पालनं नाथ ! कुर्यां
किन्त्वेकं मे वचनमव भो ! याचनं यद्धि कुर्याम् ।
कार्यं कार्यं ननु सह मया यज्ञ-दानादि सर्वं
याच्ञा दास्या इति दयित हे रक्ष वामाङ्गके माम् ॥१॥

हव्यं दत्त्वा कुरु सुमुदितं मानसं देवतानां
कव्यं कृत्वा कुरु ननु मनः सुप्रसन्नं पितृणाम् ।
सर्वानन्दं भवति हि तदाऽवेहि हे नाथ ! नित्यं
याच्ञा दास्या इति दयित हे रक्ष वामाङ्गके माम् ॥२॥

रक्षा कार्या निजकुल-गतानां समेषां जनानां
साहाय्यं वा विपदि क्रियतां नाथ ! तेषां सदैव ।
तृप्तिः कार्या निजपशुगणस्याऽपि संभालनं च
याच्ञा दास्या इति दयित हे रक्ष वामाङ्गके माम् ॥३॥

धनस्य धान्यस्य कदापि संग्रहः, क्रियेत चेत् तर्हि ममापि पृच्छनम् ।
परस्य गेहे यदि रक्ष्यते धनं, तदापि कार्यं मम पृच्छनं पुरा ॥४॥

वापी-कूप-तडाग-कुण्ड-खननं देवालयोद्घाटनं
कार्यं चेद् हरिवाटिकादि-रचनं पूजाप्रतिष्ठादिकम् ।
मां पृष्ट्वैव पुरा सहैव च मया कार्यं तदा सादरं
दासी ते विनयं करोति भगवन् ! मां रक्ष वामाङ्गके ॥५॥

अहं तव परायणा मम परायणस्त्वं भव
कदापि मनसापि नो पर-कलत्र-सङ्गी भव ।
सदा कुरु मया समं सकलकार्यजातं मुदा
निवेदयति सादरं दयित ! दासिका ते त्वियम् ॥६॥

वरवध्वोरधिकारं, कृत्वा श्लोकानिमानकरोत् ।
श्रीवृन्दावनवासी, शास्त्री वनमालिदासाख्यः ॥७॥

श्रीगुरुमुखदास-स्तुतिः

निर्माणकालः—वि० सं० २०२३ श्रावण कृष्णा पंचमी

वेदाब्धिनन्दविधुसंवति पौर्णमास्यां, श्रीलेखराजभवने शरदि प्रवृत्ते ।
मातुः पितुश्च सुखदो जगतां सदैव, पूर्णेन्दुभो गुरुमुखः प्रकटो बभूव ॥१॥
आशीर्वादाद् रामादासाभिधस्य, प्रादुर्भूतिर्यस्य चाऽऽस्ते विचित्रा ।
यां श्रुत्वैवायाति श्रद्धातिचित्रा, सोऽयं जीयाद् गौरवाढ्यो महात्मा ॥२॥

उदासीनो जन्मावधि भवरसाद् भक्तिमधुरो
वदान्यो मान्यो वा शिविसम उताहो बलिरिव ।
अपारोदारो यो सुरधुनिविहारो गज इव
सदा सत्सेवी यः स गुरुमुखदासो विजयते ॥३॥

भुवि भ्रामं भ्रामं हरिगुरुगुणग्राममलं
सदा गायं गायं सुखयति पुरा भक्तिनिरतान् ।
अमानी मानेनाऽपरजनगणं मानयति यः
सतां सेवालीनः स गुरुमुखदासो विजयते ॥४॥

सत्पादपङ्कजपरागसुरक्तभृङ्गः, सत्सेवनीयचरणोऽपि विरक्तसङ्गः ।
आद्यन्तमध्यवयसाऽऽहृत-गाङ्गसङ्गः, सोऽयं सदा जयतु सिन्धुपदे पतङ्गः ॥५॥
यस्यान्नदानसवनं स्ववनं चकार, यस्योपदेशनिचयं जनता जगार ।
अद्यापि यस्य भुवि चास्ति गुणप्रचारः, सोऽयं सदा जयतु सत्सुकृतोपचारः ॥६॥
देहेऽस्थिमांसरुधिरेऽभिमतिं विहाय, जायासुतादिषु कृतां ममतां जिगाय ।
संसार-सिन्धुमतितीर्य परं तिवयाय, तस्याऽऽसतां गुणगुणा जगतां जयाय ॥७॥
वैराग्यरागरसिको रसिकोत्तमो यः, सिन्धुप्रदेशजनि-रीतिविवर्जितो यः ।
भक्ति-प्रचारणरतो विरतो भवाब्धेः, सोऽयं सदा गुरुमुखो विजयं तनोतु ॥८॥

प्रयागे कुम्भादौ दिनमनु हरिद्वारनिलये
सदा यस्य क्षेत्रं प्रचलति सतां सेवनपरम् ।
तथा वृन्दारण्ये हरिजन-शरण्येऽति-मधुरे
सतां सेवाधारी स गुरुमुखदासो विजयताम् ॥९॥

प्रयागमुनिनामको भवति यस्य शिष्यः सुधीः
सुधीरजनरञ्जको विमलभावना-सञ्जकः ।
तमेव निजपद्धतेः सपदि दर्शकं स्वे पदे
निधाय व्रजमण्डले विपिनराजवृन्दावने ॥१०॥

जगाम हरिमन्दिरं प्रकृतिपारमानन्ददम्
महान् गुरुमुखः स नो भवतु भूतये सन्ततम् ।

प्रयागमुनिचालिता चलति साधु सिन्धीकुटी-
व्यवस्थितिरनारतं भवति सौख्यदा धीमताम् ॥११॥
इति नुतिपरवाक्यपुष्पहारै-,र्गुरुमुखदास-यतेश्चकार पूजाम् ।
हरिपदनिरतो वसँश्च वृन्दा-,वनभुवि श्रीवनमालिदासशास्त्री ॥१२॥

श्रीवनमालिदासशास्त्रिणा विरचिता श्रीगुरुमुखदासस्तुतिः सम्पूर्णा ।

अलीगढ़-निवासि-ला० श्रीगंगाप्रसादस्य नवगृहप्रवेशसमये प्रदत्तं

अभिनन्दन-पत्रम्—

निर्माणकालः—वि० सं० २०२४ बसन्त-पञ्चमी

गंगाप्रसादवणिजः खलु वर्णये किं, सौभाग्यजातममलं भवन-प्रवेशे ।
व्यासोपमा यदिह भान्ति बुधा महान्तो, विज्ञाश्च कर्मकरणेऽतिविचक्षणाश्च ॥१
यत्राऽऽचार्यो भीष्मदत्तो वरीयान्, ब्रह्मा भाति श्रीलसंकर्षणाख्यः ।
राधेश्यामो विज्ञवर्यो विभाति, प्यारेलालः सर्व-संयोजकश्च ॥२॥
मथुरानाथ-विधिज्ञो, विज्ञो यः सर्व-शास्त्राणाम् ।
मूर्त्तं शास्त्रज्ञानं, श्रीयुत-संकर्षणाचार्यः ॥३॥
श्रद्धावित्तो यादृशो याज्ञिकोऽयं, सर्वे विज्ञास्तादृशा ऋत्विजश्च ।
सर्वं कार्यं वैधरीत्या हि जातं, जातं कर्तुर्मङ्गलाशंसनाय ॥४॥
लोका मया तु बहवो जगति प्रदृष्टा, गंगाप्रसादसदृशो नहि कोऽपि दृष्टः ।
श्रद्धाधनो धनिषु सर्वजनेषु सत्सु, तस्मादयं भवति धन्यजनेषु मान्यः ॥५॥
अभिनन्दति रतिपूर्वं, गुप्तं गंगाप्रसाद-नामानम् ।
श्रीवृन्दावनवासी, शास्त्री वनमालिदासाख्यः ॥६॥

'सुदामा-श्रीदामा'—ग्रन्थे सम्मतिः

निर्माणकालः—वि० सं० २०२५ आषाढ कृष्णा षष्ठी

'सुदादा-श्रीदामा' इति समभिधानं तु सरसं
कृतं खण्डं काव्यं सरस-सुधियां खण्डमिव यत् ।
कृतं येनाऽपूर्वं प्रथममपि 'सिद्धान्तशतकं'
स मित्रानन्दाख्यः सुकविरमलात्मा विजयते ॥१॥
मित्रभावयुतमागतमात्रं, नैव त्यजामि जनं क्षणमात्रम् ।
दोषी यदपि भवेदतिमात्रं, महतामेतदगर्हितमात्रम् ॥२॥
इति राघववचसामनुसारं, मित्रभावमय-शुद्धविचारम् ।
चक्रे प्रकटं मित्रानन्दं, तमभिश्लाघे मित्रानन्दम् ॥३॥
मित्रद्वय-चरिताढ्यं, मित्रानन्दं कृतं च मित्रेण ।
काव्यमिदं प्रथतां भुवि, सलिले स्नेहस्य विन्दुरिव ॥४॥

मित्रभावमयमास्ते, देहं गेहं च मित्रस्य ।
मित्रानन्दं मित्रं, मित्रं वनमालिदासस्य ॥५॥

श्रीउडुपीकृष्णक्षेत्रे पर्याय-महोत्सवे प्रेषिता कविता—

निर्माणकालः—वि० सं० २०२६

निज-द्वैताऽमृतवृष्ट्या, निखिलो येनाऽपि जीवितो लोकः ।
स जयति धीराधारः, श्रीमन्मध्वाऽऽह्वयो मेघः ॥१॥

ब्रह्माद्यैर्वन्दितो यो निजहृदि मुनिभिर्ध्यात-पादारविन्दो
हेतुं त्यक्त्वैव भूमौ निज-पद-निरतान् मोक्तुमेवाऽवतीर्णः ।
सौन्दर्यं कामकोटेः परिभवकरणं यस्य श्रीविग्रहस्य
वन्दे तं बालकृष्णं व्रजपति-वनिता-मूर्तिमद्-भागधेयम् ॥२॥

गोपीचन्दनखण्डतश्च प्रथमं यः प्रादुरासीन्मुदा
स्तोत्रैर्द्वादशभिः कृतैः सुमधुरैरानन्दतीर्थाऽभिधैः ।
आचार्यैः परितोषमेति नितरां दामोदरः श्रीहरि-
र्वन्देऽहं तमशेषकारणमजं मन्थानदण्डाश्रयम् ॥३॥

यशोदया यः प्रथमं निबद्ध, आनन्दतीर्थैस्तदनु स्वहार्दैः ।
दामोदरः श्रीपतिरेव नः स, यशो-दयाऽलंकृतमूर्तिरव्यात् ॥४॥

कृपापारावारं भवजलधिपारं सुखकरं
जनानामाधारं प्रणतशिरसां शान्तमनसाम् ।
सदा भक्त्या लभ्यं प्रणयपरमाऽनुग्रहपरं
चिदानन्दं नन्दात्मजममर-सेव्यं श्रयत भोः ॥५॥

भगवद्-विमुख-सम्मुखयोः स्वरूपम्—

न जानन्त्येव त्वामसुरमतयः शास्त्रविदितं
त्वदीया माया तान् भ्रमयति नितान्तं व्रजपते ! ।
त्वदीस्त्वामेव प्रणयभर-शैथिल्य-मनसः
समीक्षन्ते साक्षात् त्वदपगत-मायाजवनिकाः ॥६॥

जीव-ब्रह्म-स्वरूपं यथा—

अणुं जीवात्मानं हरिचरणदासं न जननं
विभिन्नं जानीत प्रतितनु स-ज्ञानांश-विभवम् ।
चिदानन्दाकारं व्रजपतिकुमारं क-जनकं
गुणौघं निर्दोषं भजत मनुजा ! ब्रह्म सदयम् ॥७॥

श्रीमन्मध्व-मताऽनुगामिनमहं मध्वाऽध्वगश्चाप्यहं
श्रीमन्मध्व-मताऽनुपोषणपरं श्रीकृष्णपादाश्रयम् ।
तद्राद्धान्त-विवर्धिनी-समितिगं विद्वज्जनानां चयं
साष्टाङ्गं प्रणिपत्य साधु करवै सर्वस्य सम्माननम् ॥८॥

श्रीमध्व-सिद्धान्त-विवर्धिनीयं, सभा सुधर्मोपमया विभाति ।
यस्यामनेके विबुधोत्तमा वै, समासते सञ्चित-पुण्य-पुञ्जाः ॥९॥
मठद्वयस्याऽधिपतिश्च यस्यां, बृहस्पतेरप्यधिको विभाति ।
सभापतित्वेन विराजमानः, सम्माननीयः खलु तत्त्वविद्भिः ॥१०॥
येषामहं वेद्मि न भागधेयं, न रूपधेयं न च नामधेयम् ।
अनेकदेशाच्च समागता ये, तेऽप्यत्र सर्वे मम वन्दनीयाः ॥११॥
श्रीयुक्तपर्याय-महोत्सवेऽस्मिन्, समागतेभ्य खलु सर्वदिग्भ्यः ।
नमो नमः श्रीहरिभक्तिमद्भ्यः, सद्भ्यः सुहृद्भ्यो मम बान्धवेभ्यः ॥१२॥
भाण्डारकेरी-पलिमार-नाम्नोः, समृद्धयोः श्रीमठयोर्द्वयोर्यः ।
शुभाधिपत्यं समलं करोति, विद्यासुमान्यः स सदैव जीयात् ॥१३॥

श्रीमन्माधव-तत्त्व-चिन्तनपरो वेदान्तचिन्तामणि-
मध्वाध्वेन्दुरभाव-नोदनपरः शंका-कलंकान्तकृत् ।
सिद्धान्तं हरिभक्तिसाधकतमं संस्थापयन् भूतले
विद्यामान्य-जगद्गुरुर्विजयते पर्यायपूजोत्सुकः ॥१४॥
येनोक्तां सुकथां विचार्य मनुजो हर्षाऽम्बुधौ मज्जति
यं दृष्ट्वा निखिलाघमुक्तिसहितः सम्प्राप्नुयाद् दृक्फलम् ।
सङ्गं यस्य विधाय दैववशतः किं किं न सम्प्राप्नुयात्
विद्यामान्य-जगद्गुरुर्विजयते श्रीकृष्ण-पूजोत्सुकः ॥१५॥
विश्वेशतीर्थचरणा अपि विश्ववित्ता
विश्वेशपादसरसीरुह-मग्नचित्ताः ।
ये मध्व-पद्धति-समागमरीति-दक्षा-
स्ते कस्य नो वदत भो ! नहि माननीयाः ॥१६॥

रामाचार्यः पादपद्मे गुरूणां, कुर्वन् भक्तिं निस्पृहां भाति नम्रः ।
यस्याऽऽचारं वीक्ष्य सर्वेऽपि भक्ता, एवं कुर्युश्चेत् तदाचार्यभक्तिः ॥१७॥
रामाचार्याऽभिधानो निजगुरु-परिचर्यानिधानो विमानः
सर्वेषां मानधानो निरवधि च हरेस्तत्त्व-शिक्षा-विधानः ।
सौजन्यं यस्य दृष्ट्वा प्रमदमुपययौ भूरि चेतो मदीयं
सोऽयं नो कस्य मान्यः कथयत मनुजा ! श्रीहरेर्भक्तिभाग् यः ॥१८॥

श्रीकृष्ण-प्राप्त्यभिलाषः—

श्रीकृष्णाऽहं तवाऽस्मि प्रकटमिति सकृद् योऽभिधत्ते शरीरी
तं निर्भीकं विधत्ते भवभयनिकराद् यो दयावारिराशिः।
यं नित्यं श्रीयशोदा निजहृदि निहितं चुम्बतीवाऽतिप्रेम्णा
तस्याऽहं पादयुग्मं शरणमतितरां प्रीतियुक्तः करोमि ॥१९॥

कदा बालं कृष्णं सखिभिरखिलैः साग्रजमहं
मिलित्वा खेलन्तं तरणितनयारोधसि मुदा।
यशोदायाः क्रोडे व्रजपतिपुरः क्वापि ललितं
विराजं राजन्तं नयनपथमामास्मि समुदम् ॥२०॥

श्रीमत्सभापतिमुखान् विदुषः प्रणामैः, कृष्णोत्सवाय धनदानपि धन्यवादैः।
वृन्दाटवीवसतिलब्धकवित्वशक्तिः, प्रेम्णाऽभिनन्दति भृशं वनमालिदासः ॥२१

वरवध्वोराशीर्वादात्मकः शुभसन्देशः

निर्माणकालः—वि० सं० २०२७ पौष कृष्णा प्रतिपदा

श्रीमद्वृन्दारण्यकल्पद्रुमाधः, श्रीगोविन्दस्याऽन्तिके सौम्यदेशे।
मंजूषायाः केशवाचार्यपुत्र्याः, सौम्ये लग्ने भाति सौम्यो विवाहः ॥१॥

ऋषि-कर-ख-कराढ्ये विक्रमाब्देऽपि पौषे
प्रतिपदि रविवारे श्रीलगोविन्दपादे।
शुभविजयकुमारस्यापि मंजूषिकाया
विमलपरिणयोऽयं सन्ततं सौख्यदोऽस्तु ॥२॥

स विजयो हरिदर्शनसंभवो, विहरतां ननु केशवदत्तया।
तनयया गुणमंजुमनोज्ञया, विमलया गृहकर्मणि दक्षया ॥३॥

भवति परिणयो योऽद्य, मंजूषा-विजययोरत्र।
परमानन्दं तत्र, तनुतां विपुलं स वनमाली ॥४॥

वैकुण्ठे रमते यथा कमलया श्रीसत्यनारायणः
कैलासे रमते यथा गिरिजया श्रीशंकरः शंकरः।
साकेते रमते यथा क्षितिजया श्रीरामचन्द्रः प्रभुः
सानन्दं रमयां तथैव विजयो मंजूषया स्वे पुरे ॥५॥

वरवध्वोः शुभेच्छुः—श्रीवनमालिदास शास्त्री

श्रीवृन्दावनवास्तव्यः दि० १३-१२-७०

श्रीप्रभुपाद-स्मरणस्तोत्रम्

निर्माणकालः—वि० सं० २०२७

समुद्भूतिर्भक्तेरपि खलु विनोदात् समभवत्
यदीया सम्पूज्या सुमतिरिव माता भगवती ।
स्वयं यः सौन्दर्याञ्चिततनुरभूद् वैष्णववरः
स आचार्यत्वेन स्फुरतु प्रभुपादो मम पुरः ॥१॥

जगन्नाथक्षेत्रे जननसमये यस्य निटिले
बभावूर्ध्वं पुण्ड्रं विमलमुपवीतं च वपुषि ।
प्रसादान्ता संज्ञा भवति विमला यस्य च पुरा
स आचार्यत्वेन स्फुरतु प्रभुपादो मम पुरः ॥२॥

जगन्नाथस्यांघ्र्योर्ग्रहणमनु तत्कण्ठपदतो
गृहीत्वा तन्मालां लघुनिजकराभ्यां शिशुतया ।
शिशुत्वेऽपि स्वीयं सहजमनुरागं गदति यः
स आचार्यत्वेन स्फुरतु प्रभुपादो मम पुरः ॥३॥

प्रमाणैः शास्त्राणां सदसि वदति स्माऽल्पवयसि
द्विजेभ्यः श्रेष्ठा भो ! जगति नितरां वैष्णवजनाः ।
विशुद्धां भक्तिं यः स्वयमवति वक्ति स्म च पुरा
स आचार्यत्वेन स्फुरतु प्रभुपादो मम पुरः ॥४॥

द्विजानां भक्तानां भवति च कियान् भेद इति सत्
सुसिद्धान्तेनाढ्यं रचयति पुरा पुस्तकमपि ।
सदाचाराऽऽचार्याऽऽचरण-कथकं ग्रन्थमपि यः
स आचार्यत्वेन स्फुरतु प्रभुपादो मम पुरः ॥५॥

निजाचार्यत्वं यः प्रथयति सदाचार-निवहैः
शचीसूनोस्तुल्यं मधुर-हरि-संकीर्तनमपि ।
गुरोः सेवां मुख्यां निगदति पुरा कृष्णगतये
स आचार्यत्वेन स्फुरतु प्रभुपादो मम पुरः ॥६॥

महामन्त्रस्याऽनुष्ठिति-परिसमाप्तौ स्तितहरिः
प्रचारार्थं यस्मै स्वयमुपदिदेश स्वपनके ।
तथा शक्तेः सञ्चारणमपि ददौ यस्य वपुषि
स आचार्यत्वेन स्फुरतु प्रभुपादो मम पुरः ॥७॥

विलुप्ता तीर्थानां पुनरपि च कीर्तिः प्रकटिता
प्रसिद्ध-क्षेत्राणां भ्रमणमपि येन प्रकटितम् ।

हरेर्धाम्नां नाम्नां सव-सकल-माहात्म्यमपि च
स आचार्यत्वेन स्फुरतु प्रभुपादो मम पुरः ॥८॥
तथा 'जन्माद्यस्य'—प्रथमतर-पद्यस्य मधुरा
कृता त्रिंशद्व्याख्या विवृतिरपरा भागवतभाक् ।
तथा ज्योतिर्वित्सु प्रथमतर-ज्योतिर्विदपि यः
स आचार्यत्वेन स्फुरतु प्रभुपादो मम पुरः ॥९॥
तथा पञ्चोपास्तेरपि खलु हरेर्भक्तिरधिका
सदा कार्या रूपाऽनुगतिपरलोकैस्तदुदिता ।
इतीमं सिद्धान्तं प्रकटमपि चक्रे जगति यः
स आचार्यत्वेन स्फुरतु प्रभुपादो मम पुरः ॥१०॥
भुवि भ्रामं भ्रामं परिभवति यो नास्तिकचयं
कथा द्वारा नित्यं सुखयतितरामास्तिकचयम् ।
हरेस्तत्त्वज्ञो यो भवति नितरामेव च पुरा
स आचार्यत्वेन स्फुरतु प्रभुपादो मम पुरः ॥११॥
भुवि भ्रामं भ्रामं श्रुतिशरचयैर्नास्तिक-मृगाः
कृताः पापारण्यान्नरक-भयदाद् धर्मवनगाः ।
न यत्राऽऽस्ते भीतिः शमन-मृगयु-त्यक्तशरजा
स आचार्यत्वेन स्फुरतु प्रभुपादो मम पुरः ॥१२॥
श्रुतीनां पत्री नास्तिक-मदविनाशाय लिखिता
तथा भक्तिग्रन्थेष्वपि बहुषु टीका विलिखिताः ।
तथा येन श्रीभागवत-सुविमर्शो विरचितः
स आचार्यत्वेन स्फुरतु प्रभुपादो मम पुरः ॥१३॥
सदा स्वादं स्वादं सितहरि-कथा-कीर्तन-रसं
प्रियैर्भक्तै रात्रिन्दिवमपि च यो नैव बुबुधे ।
तथा वै यस्याऽजागरुरखिल-शास्त्राणि हृदये
स आचार्यत्वेन स्फुरतु प्रभुपादो मम पुरः ॥१४॥
सदों विष्णोः पाद-प्रतिम-पवनो यः समुदितः
स्वरूप-श्रीरूपानुग-विमल-सिद्धान्त-सरणिः ।
तथा श्रीराधाया-दयित-दयितः प्रेमजलधिः
स आचार्यत्वेन स्फुरतु प्रभुपादो मम पुरः ॥१५॥
हरेश्चैतन्यस्य प्रबलकृपया पूरिततनु-
स्तथा धीराऽधीराश्रित-निरभिमानो भवति यः ।

हरेर्गौराङ्गस्य स्मरणगुणतो जातजडिमा
स आचार्यत्वेन स्फुरतु प्रभुपादो मम पुरः ॥१६॥
स्मृतेः स्तोत्रं चैतत् प्रथित-प्रभुपादस्य विमलं
शरीरी यो नित्यं पठति मुदितो भावसहितः।
गुरौ तस्य प्रीतिर्भवति विमला भावविपुला
तथा श्रीमद्राधा-रमण-करुणा-भाजनपि ॥१७॥
श्रीभक्तिसिद्धान्तसरस्वतीति-,नाम्नां हरेर्नाम-प्रचारकाणाम्।
स्तोत्रं स्मृतेः संलिखति स्म भक्त्या, महाकविः श्रीवनमालिदासः ॥१८॥

श्रीस्वामि-हरिदास-स्तुतिः

यद्भक्तिभाव-वशतः प्रकटो विहारी, ह्यद्यापि यस्य सुयशः प्रकटीकरोति।
श्रीआशुधीर-तनयो विनयोक्तिपूर्णः, सोऽयं सदा विजयतां हरिदासवर्यः ॥१॥
इच्छाद्वैतमताचार्यः सर्वाचार्य-प्रकाशकः।
रसिकाचार्यवर्योऽयं मयि कृपयतु प्रभुः ॥२॥

भारत-संस्कृति-प्रशंसा—

यामास्थाय समस्त-मस्तकमणिर्जायेत जीवोऽधमो
यस्या रक्षण-रक्षितो विमलधीः स्वर्गेऽपि सम्पूज्यते।
पारे व्योम्नि विराजते च सततं यस्याः समालोचनात्
सैषा भारत-संस्कृतिर्विजयतामित्यन्तराशास्महे ॥१॥

दशकुमारचरितोक्त-दशकुमाराणां नामानि—

श्रीराजवाहनः पूर्वं प्रमितिश्च ततः परम्।
मन्त्रगुप्तो मित्रगुप्तो विश्रुतश्च ततः परम् ॥१॥
पुष्पोद्भवश्चाप्यपहारवर्मा, श्रीसोमदत्तोऽप्युपहारवर्मा।
इमान् कुमारान् दशमार्थपालाँ-,ल्लिलेख विद्वान् वनमालिदासः ॥२॥

'कल्याण'-पत्रिकाया आदि संपादकस्य श्रीहनुमान्प्रसाद-पोद्दारस्य अभिनन्दनम्

निर्माणकालः—वि० सं० २०२६

यस्योपदेशनिवहैर्भगवत्प्रसादः, संजायते मनसि तिष्ठति नो विषादः।
यस्यैव भावनिवहं जनताऽऽससाद, सोऽयं सदा जयति भो ! हनुमत्प्रसादः ॥१॥
कल्याणमावहति यस्य निदेशभाजां, 'कल्याण'-पत्रमखिले जगति प्रशस्तम्।
गोरक्षनामनि पुरेऽपि प्रकाशमानं, सोऽयं सदा जयति भो ! हनुमत्प्रसादः ॥२॥
अभिनन्दति रतिपूर्वं, श्रीयुत-हनुमत्प्रसाद-पोद्दारम्।
श्रीवृन्दावनवासी, शास्त्री वनमालिदासाख्यः ॥३॥

श्रीस्वामि-गङ्गेश्वरानन्दाऽभिनन्दनम्

निर्माणकाल:—वि० सं० २०३०

स जयति श्रौतमुनीति, विख्यातो ह्याश्रमो जगति ।
यस्यप्राङ्गणमध्ये, नृत्यति श्रौत: सुसिद्धान्त: ॥१॥
गङ्गेश्वरानन्दमहोदया इमे, वेदान्तसिद्धान्तनितान्तपारगा: ;
एषां हि सौजन्यबलेन शोभते, श्रीवेदमूर्तेरधिका प्रतिष्ठा ॥२॥
एषां समक्षे किमु वक्तुमीशो, भवामि चात्यन्तसुमन्दबुद्धि: ।
तथापि सौशील्यमहो अमीषां, वक्तुं मुदा मां मुखरीकरोति ॥३॥
सर्वेषां पयसां समुद्रसलिले यद्वद्धि सम्मेलनं
श्रीमद्भागवते समस्तनिगमार्थानां हि सम्मेलनम् ।
नानादेशभुवां नृणां खलु यथा दिल्ल्यां हि सम्मेलनं
भात्येतत्तदिव प्रकाण्डविदुषां श्रीवेदसम्मेलनम् ॥४॥
अभिनन्दति रतिपूर्वं, श्रीयुत-गङ्गेश्वरानन्दान् ।
श्रीवृन्दावनवासी, शास्त्री वनमालिदासाख्य: ॥५॥

श्रीहरेकृष्णशास्त्री की वंशीपर सम्मति:—

निर्माणकाल:—वि० सं० २०३०

श्रीबाबूरामेत्युपसंज्ञकस्य, श्रीमद्हरेकृष्ण-महोदयस्य ।
मनो हरत्येव जनस्य 'वंशी', वंशीधरस्याशु सुवंशिकेव ॥१॥

सुदामाकुटीरे श्रीसीताराम-प्रतिष्ठायां समागतानां सर्वेषां महानुभावानां सुस्वागतम्—

निर्माणकाल:—वि० सं० २०३०

समागता ये शुभ-चित्रकूटात्, साकेततो येऽपि च दिव्यधाम्न: ।
वृन्दावनाद् ये च महानुभावा:, सुस्वागतं सर्वजनस्य कुर्वे ॥१॥
श्रीकृष्णचन्द्रमित्रस्य सुदाम्नस्तु यथा पुरा ।
स्थितिरास्ते तथैवाऽस्य रामचन्द्रपरात्मन: ॥२॥
सुदामा श्रीकृष्णं सहचरतया पूर्वमभजत्
सुदामा श्रीरामं पुनरपि च सोऽयं भजति किम् ।
[illegible] साधूनां परिचरणत: प्राप सुयशो
न सेवा साधूनां व्रजति हि कदाचिद् विफलताम् ॥३॥
गंगादासो नृत्यगोपालदासो, द्वावप्येतौ साधुसेवानिमग्नौ ।
अन्येऽप्येते साधु-सन्तो महान्त:, केषां न स्युर्वन्दनीयास्त्रिकालम् ॥४॥

आयुर्वेदाचार्यः, श्रीयुतबलरामदासोऽयम् ।
श्रीमान् परमानन्दो, यजमानो मुख्यतां यातः ॥५॥
अनिन्दति रतिपूर्वं, सर्वानन्यान् समागतान् महतः ।
श्रीवृन्दावनवासी, शास्त्री वनमालिदासाख्यः ॥६॥

श्रीकृष्ण-स्तोत्रम्

निर्माणकालः—वि० सं० २०३०

यो वै चिन्तामणिमयतले कल्पवृक्षावृतेऽस्मिन्
वृन्दारण्ये सकलसुरभीः पालयत्येत्र नित्यम् ।
भक्तैर्दृश्यो विहरति सदा गोप-गोपीभिरेव
सोऽयं कृष्णो जयति नितरां ब्रह्म ज्योतिः स्वरूपम् ॥१॥

देवैः सर्वैः श्रुतिभिरखिलैः साधुभिः सर्वदैव
पूज्यो वन्द्यः सरसमनसा ध्यातपादारविन्दः ।
वेदैर्वेद्यः सम-निगमविद् वेद वेदान्तकृद् यः
सोऽयं कृष्णो जयति नितरां ब्रह्म ज्योतिः स्वरूपम् ॥२॥

विश्वं चेदं सृजति निखिलं ब्रह्मरूपेण यो वै
सर्वाञ्जीवानवति सततं विष्णुरूपेण पूर्णः ।
यः सर्वं संहरति समये शंकरः सन् कपर्दी
सोऽयं कृष्णो जयति नितरां ब्रह्म ज्योतिः स्वरूपम् ॥३॥

वेदैर्लभ्यो भवति न च यः प्रेममात्रैकलभ्यो
नैवाधिक्यं नहि न समतां येन कोऽपीह धत्ते ।
यस्मात् तत्त्वं नहि परतरं किञ्चिदस्तीह लोके
सोऽयं कृष्णो जयति नितरां ब्रह्म ज्योतिः स्वरूपम् ॥४॥

दिव्यं यस्य प्रकटमखिलं जन्मकर्मादिरूपं
हेयाभावाद् भवति ननु यः सच्चिदानन्दरूपः ।
तस्मादुक्तो भवति निगमैर्निर्गुणो निर्विकारः
सोऽयं कृष्णो जयति नितरां ब्रह्म ज्योतिः स्वरूपम् ॥५॥

यो वै कृष्णं भजति नितरां पूर्वरूपेण मत्वा
तस्यैवाऽऽस्ते सकलमवनौ सार्थकं जन्म कर्म ।
ज्ञानी ध्यानी भवति कथितो दिव्यकर्मा महात्मा
तस्यैवाऽयं भवति विदितो ब्रह्म ज्योतिः स्वरूपम् ॥६॥

श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पू-प्रकाशन-समये भारतशिक्षामन्त्रालयाऽध्यक्षं प्रति विज्ञप्तिः—

निर्माणकालः—वि० सं० २०३०

वस्तूनां द्विगुणं क्षणं क्षणमहो मूल्यं वरीवृध्यते
चेतःप्राङ्गण-सङ्गिनी-विकलता नित्यं नरीनृत्यते।
स्वास्थ्यं मे विमलं जरा बलवती वेगाज्जरीगृह्यते
किन्त्वेका भवतां प्रकाश-विधये स्वाशा वरीवृत्यते ॥१॥

श्रीस्वतःप्रकाश-स्तोत्रम्

अर्थात्—'श्रीहरि बाबा' की स्तुतिः

निर्माणकालः—वि० सं० २०३१ भाद्रपद द्वादशी

हरि हरि हरिरिति कथनाद्, 'हरिबाबा' इत्युपाधिमायातः।
तं श्रीस्वतःप्रकाशं, स्वात्माभासं नमस्यामः ॥१॥
एकत्रदेशेऽपि प्रकाशमायन्, समस्तदेशं स्वप्रकाशयुक्तम्।
चकार नाम्नैव हरेरजस्रं, स्वतःप्रकाशं तमहं नमामि ॥२॥
गवाँदि-ग्रामेषु निरीक्ष्य गंगा-,प्रवाह-मग्नान् बहु-जीवसंघान्।
बबन्ध गंगां निज-प्रेमरज्ज्वा, स्वतःप्रकाशं तमहं नमामि ॥३॥
हस्ते गृहीत्वा हरिकीर्ति-घण्टां, नृत्यन् हि यो नर्तयति स्म सर्वान्।
प्रेम्णा प्रगायन् हरिनाममन्त्रं, स्वतःप्रकाशं तमहं नमामि ॥४॥
रिक्तश्च जन्मावधि लोकभावैः, पूर्णः सदा श्रीहरि-भक्तिभावैः।
विनम्रतायाः परिपूर्ण-मूर्तिः, स्वतःप्रकाशं तमहं नमामि ॥५॥
ततान गौराङ्गहरेः पदाब्जे, भक्तेर्वितानं बहु भृङ्गवद् यः।
तस्यैव लीलाऽभिनयादिभावैः, स्वतःप्रकाशं तमहं नमामि ॥६॥
नीचीन-भावेन मुखेन तिष्ठन्, प्रोच्चैः सतां चेतसि यः प्रविष्टः।
विनम्रभावं भजतां तनोति, स्वतःप्रकाशं तमहं नमामि ॥७॥
हरे कृष्णेत्युच्चैर्निगदति सदा प्रेम-विवशः
कदाचिद् रामेति प्रणयविकलो गौर इति च।
सदा भक्तेर्भावैर्विकलित-तनुः स्तम्भ-प्रमुखैः
तमेतं गौराङ्ग-प्रणय-विवशं नौमि सततम् ॥८॥
स्वतःप्रकाशस्य हि स्तोत्रमेतं, पठत्यपूर्वं बहु-भावपूर्वम्।
हरेरनन्तस्य पदारविन्दे, स्वतःप्रकाशं हि समाप्नुयात् सः ॥९॥
एकाग्निशून्यकर-सम्मित-विक्रमाब्दे, वृन्दावने हरिदिने शुभ-भाद्रमासे।
वृन्दाटवी-वसति-लब्ध-कवित्वशक्तिः,स्तोत्रं त्विदं रचितवान् वनमालिदासः॥१०

श्रीराम-कृष्णयोरैक्य-निदर्शन-स्थले श्रीवृन्दावने दीयमानं

अभिनन्दन-पत्रम्

निर्माणकालः—वि० सं० २०३१ फाल्गुन

श्रीमद्भागवत-परमहंस-परिव्राजकाचार्यवर्य ! वर्यसमस्त-शास्त्रपारावार-पारदृश्व-यम-नियमासन–प्राणायाम–प्रत्याहार–धारणा–ध्यानाद्यष्टाङ्ग-योगानुष्ठाननिष्ठ ! निष्ठजन इव श्रीहरिहरानन्दमय-पादारविन्द-द्वन्द्व-मकरन्द-मिलिन्दवर ! वरचरित ! चरितानुरञ्जितसाधुलोक ! लोकख्यात-यशः-शीतकर ! करभाजन इव करभाजन ! सभाजनसभाजित ! जित-नास्तिकलोक ! लोकलोकान्तरख्यात-सनातनधर्मरक्षणैकदीक्षागुरो! स्वामिन्! श्रीमते दीयमानमभिनन्दनपत्रमिदं सादरमङ्गीक्रियतम्—

सनातनं धर्ममिहोपदर्शयन्, आनन्दसिन्धुं परितः प्रवर्धयन् ।
समन्ततो नास्तिकलोकमर्दयन्, विराजते श्रीकरपात्र-साधुराट् ॥१॥
निजसनातन-धर्मरिरक्षिषा-,वशत एव हरिः स्वयमागतः ।
इति विचारपरैर्व्रजवासिभिः, सविनयं यतिराडभिनन्द्यते ॥२॥
तुलसिदास-महात्मवराय यद्, भगवता खलु दर्शितमादरात् ।
मुरलिकाधरके निजरूपके, रघुवरस्य धनुर्धररूपकम् ॥३॥
स्थलस्य तस्यैव पुनः प्रकाशे, समागतानां करभाजनानाम् ।
वृन्दावने रामनिदर्श-केते, सुस्वागतं भो ! वयमाचरामः ॥४॥
यत्र सन्दर्शितं रूपं वृन्दावन-विहारिणा ।
ज्ञानकन्था-स्थलं तद् वै श्रीसाकेतविहारिणः ॥५॥
गवेषणं यस्य सुदीर्घकालं, कृतं सयत्नं मनुजैरनेकैः ।
प्रमाण-बाहुल्य-निदर्शनेन, प्राचीकटत् तद् बलराममिश्रः ॥६॥
अभिनन्दति रतिपूर्वं, श्रीयुत-करपात्र-संज्ञया विदितान् ।
श्रीवृन्दावनवासी, शास्त्री वनमालिदासाख्यः ॥७॥

संस्कृत-प्रशस्तिः

निर्माणकालः—वि० सं० २०३१ चैत्र कृष्ण

संस्कृतं देवभाषा भोः श्वासरूपं च ब्रह्मणः ।
सर्वदा सर्वलोकेषु चैकरूपं विराजते ॥१॥

वेदोपवेदोपनिषत्समूहः, सूत्राणि सर्वाण्यपि संस्कृते वै ।
स्मृतीतिहासाश्च पुराणजातं, तथैव सर्वाण्यपि दर्शनानि ।
मन्त्राश्च तन्त्राण्यपि यन्त्रकाणि, सुनीति-शास्त्राणि च नाटकानि ॥२॥

खगोल-भूगोल-कगोलकं च, सामुद्रिकं वैद्यकमर्थशास्त्रम् ।
यत्किञ्च भूतं च भवद् भविष्यद्, विज्ञायते संस्कृत एव सर्वम् ॥३॥
अलौकिकं लौकिकमर्थजातं, ज्ञानं सविज्ञानमथापवर्ग्यम् ।
ब्रह्मात्मतत्त्वं प्रकृतेश्चतत्त्वं, विशिष्टतत्त्वं च समस्ततत्त्वम् ॥४॥
तस्मात् समस्तैरपि सर्वतत्त्व-,विज्ञातुकामैर्मनुजैः सयत्नम् ।
यथाधिकारं पठनीयमेव, सुसंस्कृतं संस्कृतिरक्षणाय ॥५॥
इदानीन्तनानां जनानां विचित्रा, दशा वर्तते खेदयत्येव विज्ञान् ।
पठन्तीह नो पाठयन्त्येव सम्यक्, ततस्ते निजाऽज्ञानतां ख्यापयन्ति ॥६॥
तस्मात् सर्वैर्भारते भारतेऽस्मिन्, दिव्या भव्या भारती पाठनीया ।
त्यक्त्वाऽऽलस्यं मानसं वा विरोधं, संघीभूयैवाऽऽशु कार्यं विधेयम् ॥७॥

श्रीभगवत्कृपा का महत्त्व एवं स्वरूप

[लेखक—महाकवि श्रीवनमालिदास शास्त्री, वृन्दावन]

‘पृथ्वी’—नामकं छन्दः

समस्त-पुरुषार्थतः पृथुतमा सतां सम्मता
समस्तजनतारिणी प्रतिसमीक्ष्यमाणैव या ।
हरिं निजवशे यथा शुभ-यशोदयाकारिणी
हरेर्हृदि विहारिणी भगवतः कृपा तां नुमः ॥

हम सब भक्तजन, भगवान् की उस कृपा को बारम्बार नमस्कार करते हैं कि, जो भगवत्कृपा, शास्त्रों के मर्मज्ञ सन्तों की दृष्टि में, धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्षरूप समस्त पुरुषार्थों की अपेक्षा, अतिशय श्रेष्ठ मानी गयी है, एवं जो प्रतीक्षा करनेमात्र से ही समस्त जनों का उद्धार करनेवाली है; एवं जो अपनी स्वतन्त्र शक्ति की प्रेरणा से, मङ्गलमयी श्रीयशोदा मैया के द्वारा, श्रीहरि को भी अपने वश में करनेवाली है; तथा सर्वतन्त्रस्वतन्त्रा जो भगवत्कृपा, श्रीहरि के हृदय-प्राङ्गण में, सदा विहार करनेवाली है ।

इस श्लोक की विशिष्ट व्याख्या—

“श्रीचैतन्यमहाप्रभु और भगवत्कृपा” इस शीर्षकवाले लेख में ‘श्रीभगवत्कृपा-अङ्क’ में प्रकाशित है ।

‘कल्याण’-पत्रिकायाः प्रधान-सम्पादकस्य साधुशिरोमणेः श्रीरामसुखदासस्य

अभिनन्दन-पत्रम्

निर्माणकालः—वि० सं० २०३३

स जयति साधुशिरोमणिः, स्वामि-श्रीलरामसुखदासाख्यः ।
रामस्नेह-चितात्मा, श्रीकृष्णानन्द-मग्नो यः ॥१॥

श्रीरामचन्द्र-पदपङ्कज-राजहंसः, श्रीकृष्णचन्द्र-पदपङ्कज-राजभृङ्गः।
भक्तिप्रचारण-कलाकुशलो य आस्ते, तं स्वामिरामसुखदासमहं नतोऽस्मि ॥२
गीता-भाषाभाष्यमाविश्चकार, सौम्याकारः कर्मसंविद्-विहारः।
वैराग्याक्तः साधुवृत्तः सुचित्तः, श्रीगीतायास्तत्त्ववेत्ता सुवित्तः ॥३
यः सर्वशास्त्र-परिशीलनजागरूकः, सत्सर्वशास्त्र-हृदयङ्गम-वावदूकः।
सन्मात्र-देवपरितर्पण-यायजूक-,स्तं स्वामिरामसुखदासमहं नतोऽस्मि ॥४
सत्पादपङ्कज-पराग-सुरक्त-भृङ्गः, सत्सेवनीयचरणोऽपि विरक्तसङ्गः।
आद्यन्तमध्यवयसाऽऽहृतगाङ्गसङ्गः, सोऽयं सदा जयतु भक्तिकजे पतङ्ग ॥५
यद्भक्ति-दानसवनं स्ववनं चकार, यस्योपदेशनिचयं जनता जगार।
अद्यापि यस्य भुवि चास्ति गुण-प्रचारः, सोऽयं सदा जयतु सत्सुकृतोपचारः ॥६

उदासीनो जन्मावधि भवरमाद् भक्तिमधुरो
वदान्यो मान्यो वा शिविसम उतारो बलिरिव।
अपारोदारो यो सुरधुनिविहारो गज इव
सदा सत्सेवी यः स हरिसुखदासो विजयताम् ॥७॥

भुवि भ्रामं भ्रामं हरिगुरुगुणग्राममलं
सदा गायं गायं सुखयति मुहुर्भक्तिरसिकान्।
अमानी मानेनाऽपरजनगणं मानयति यः
सतां सेवालीनः स हरिसुखदासो विजयताम् ॥८॥

श्रीमन्माधव-तत्त्व-चिन्तनपरो वेदान्तचिन्तामणिः
स्नेहाऽब्धेन्दुरभावनोदनपरः शंका-कलंकान्तकृत्।
सिद्धान्तं हरिभक्तिसाधकतमं संस्थापयन् भूतले
स्वामी रामसुखः सदा विजयतां कल्याण-सम्पादकः ॥९॥

येनोक्तां सुकथां विचार्य मनुजो हर्षाम्बुधौ मज्जति
यं दृष्ट्वा निखिलाघमुक्तिसहितः सम्प्राप्नुयाद् दृक्फलम्।
सङ्गं यस्य विधाय दैववशतः किं किं न सम्प्राप्नुयात्
स्वामी रामसुखः सदा विजयतां कल्याण-सम्पादकः ॥१०॥

यदङ्घ्रिनखमण्डलं हृदि कृतं सुसत्सेवकै-
र्विनाशयति हृत्तमः प्रबलशक्तिमद् भानुवत्।
य एवमपि सर्वदा भजति नम्रता-कम्रतां
स रामसुखदासको जयति साधु-संसन्मणिः। ११॥

ममोपरि कृपालुतां निरभिमानितां दर्शयन्
तनोति निरपेक्षया सहजदीन-वात्सल्यतः।

य एवमपि सर्वदा भजति राधिका-माधवं
स रामसुखदासको जयति साधु-संसन्मणिः ॥१२॥
आयुर्वेदाचार्यवर्यो महात्मा, रामद्वाराऽध्यक्ष-संस्थापकश्च ।
दूरादेव स्नेहमय्याऽऽत्मदृष्ट्या, शक्तं भक्तं नीरुजं मां करोतु ॥१३॥
अभिनन्दति रतिपूर्वं, स्वामिनं रामसुखदास-नामानम् ।
श्रीवृन्दावनवासी, शास्त्री वनमालिदासाख्यः ॥१४॥

श्रीपूर्णानन्दतीर्थ (श्रीउड़ियाबाबाजी) जन्म-शताब्दी-महोत्सवे कृता स्तुतिः

निर्माणकालः—वि० सं० २०३१ जन्माष्टमी

स जयति पूर्णानन्दो, नैज-शताब्दीमहोत्सवानन्दैः ।
आनन्दयति हि सर्वान्, नानाभावान् सतः पुरुषान् ॥१॥
श्रीपूर्णानन्दतीर्थोऽयं श्रीपूर्णानन्दतीर्थभाक् ।
श्रीपूर्णानन्दतीर्थानां श्रीपूर्णानन्दतीर्थदः ॥२॥
अखण्डानन्दपूर्णो योऽखण्डानन्दसरस्वती ।
संचालकश्च सर्वस्य मयि कृपयतु प्रभुः ॥३॥

श्रीमद्वनमालि-त्रितयम्

येषां काव्य-विनिर्मितौ पटुतरा मेधा वरीवृत्यते
येषां वैष्णवशास्त्रतत्त्वमखिलं चेतो जरीगृह्यते ।
तान् सर्वश्रुतिवेदिनो गुरुवरानाप्तुं शुभाशीर्वचः
श्रीश्रीमद्वनमालिशास्त्रिचरणान् संस्तौम्यहं केशवः ॥१॥
येषां काव्य-सुसौरभं बुधजनस्वान्तं चरीकृष्यते
येषां श्रीव्रजराजमूनुचरितं चित्ते नरीनृत्यते ।
येषां काव्यमभीक्ष्य काव्यरचनागर्वो दर्नीध्वस्यते
तांश्रीमद्वनमालिशास्त्रिचरणान् संस्तौम्यहं केशवः ॥२॥
येषां वाचि सरस्वती प्रतिदिनं शुद्धा प्रतेष्ठीयते
येषां नाम निशम्य सद्गुणयुतं चेतः प्रसाभ्द्यते ।
वृन्दारण्य-निवास एव सततं चित्तेन यैः काम्यते
तान् श्रीमद्वनमालिशास्त्रिचरणान् संस्तौम्यहं केशवः ॥३॥
येषां सरस्वती वश्या तेषां किल महात्मनाम् ।
कवीन्द्रणां त्रिभिः पद्यैर्नूनमल्पायते स्तुतिः ॥४॥

तत्रभवतां भवतां कृपाकटाक्षलवाभिलाषुकः केशवशरणः

श्रीमद्विज्ञशिरोमणिं कविवरं भक्तिप्रचारे रतं
कृष्णध्यानपरायणं हरिसखं श्रीमित्रभावप्रदम्
जीवानामुपदेशदानविधया कल्याण-कल्पद्रुमं
श्रीलश्रीवनमालिदाससुगुरुं नित्यं नमामो वयम् ।

कवित्त—

[रचयिता—श्रीवनमालिदास शास्त्री]

निर्माणकाल— वि० सं० २००८

हिम परवत गेह-गेहिनी जो मेनका ते
प्रथम प्रगट भई हिम कन्दरान में ।
देवलोक हेतु देवलोक को गमनसेतु
देवलोक गई देवलोक यशगान में ।।
सगरतनय-तरणाय सगरादि ने जो
सुमिरि विविध विधि बैठ योग ध्यान में ।
गंगा महारानी भगीरथ यश की निशानी
सोई आ विराजी आज शम्भु की जटान में ।।१

अदिति दिति के यथा कश्यप हैं प्राणपति
मनु महाराज शतरूपा जू के वन्द्य हैं ।
नल दमयन्ती जू के सत्यवान् सावित्री के
इन्द्रणी के इन्द्र अरु रोहिणी के चन्द हैं ।।
कौशल्या के कौशलेश हैं भवानी के महेश
राधिका के राधिकेश सीता-रामचन्द हैं ।
लोपामुद्रा के अगस्त्य अरुन्धती के हैं वसिष्ठ
ताहि विधि प्राणप्रिय जसुदा के नन्द हैं ।।२

श्रीकृष्ण की छड़ी का वर्णन—

हेम की रची है मणि माणिक खची है कैधौं
आप विरची है विधि सुषमा सुधाम की ।
श्याम घन में ते कढ़ि दामिनी खड़ी है कैधौं
माल की लरी है टूटी 'राधौ' बहु दाम की ।।
कैधौं करकंज की ही कला प्रगटी है कैधौं
लाल पै लुभाई आई ललना है काम की ।
किन्नरी नरी है कैधौं इन्द्र की परी है कैधौं
मोहिनी जरी है छविदार छरी श्याम की ।।३

मुद्रक—बनवारीलाल शर्मा, श्रीसर्वेश्वर प्रेस, वृन्दावन ।